

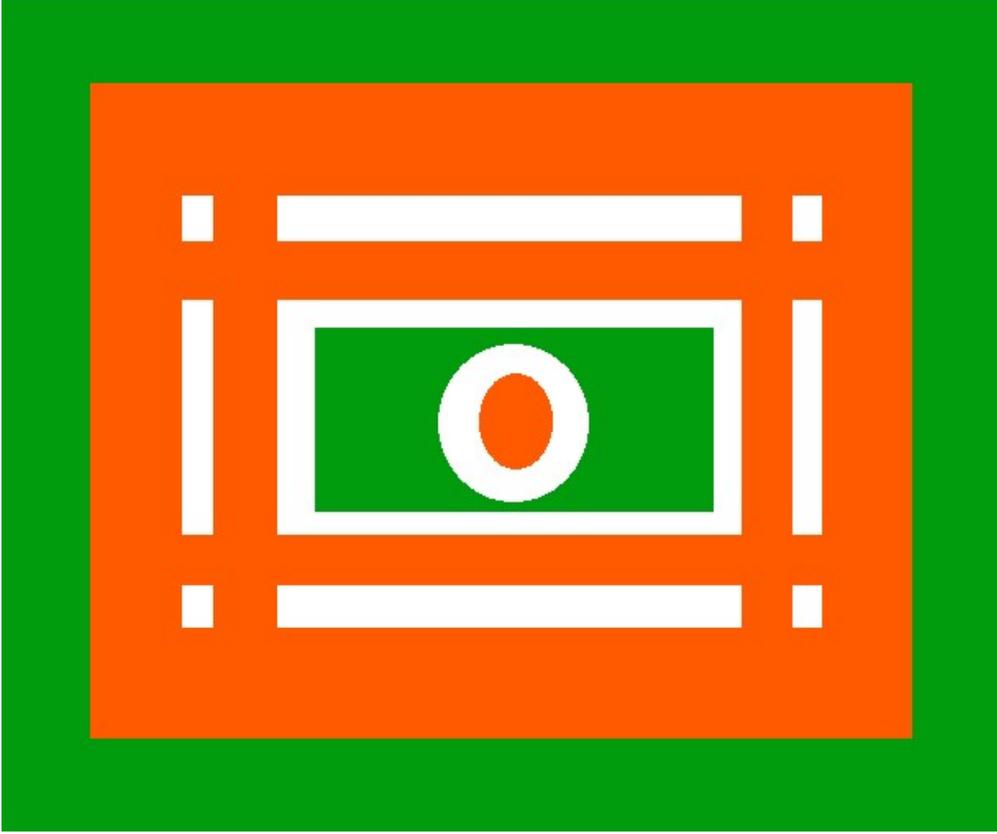


उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

मानविकी विद्याशाखा

तुलनात्मक एवं भारतीय साहित्य (भाग दो)

चतुर्थ सेमेस्टर 610



विशेषज्ञ समिति

प्रो. एच.पी. शुक्ल निदेशक, मानविकी विद्याशाखा, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल	प्रो. सत्यकाम हिन्दी विभाग इग्नू, नई दिल्ली
--	---

प्रो.आर.सी.शर्मा
हिन्दी विभाग
अलीगढ़ विश्वविद्यालय, अलीगढ़

डॉ. राजेन्द्र कैड़ा असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल	डॉ. शशांक शुक्ला असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल
--	---

पाठ्यक्रम समन्वयक, संयोजन एवं संपादन

डॉ. राजेन्द्र कैड़ा असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल	डॉ. शशांक शुक्ला असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल
---	---

डॉ. हेमचन्द्र दुबे

8,9

हिंदी विभाग, रा.स्ना.महाविद्यालय गरुड़

बागेश्वर, उत्तराखंड

डॉ. नागेन्द्र प्रसाद ध्यानी

10,11

उप-निदेशक, उत्तराखंड भाषा संस्थान

देहरादून

डॉ. राजेन्द्र सिंह टोकी

12

अध्यक्ष हिन्दी विभाग

ए.एस.कॉलेज खन्ना, पंजाब

डा.मीता शर्मा

13

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा, राजस्थान

कापीराइट@उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

संस्करण: 2022

सीमित वितरण हेतु पूर्व प्रकाशन प्रति

प्रकाशक: उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल -263139

मुद्रक : प्रीमियर प्रिंटिंग प्रेस, जयपुर

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल -263139

ISBN - 978-93-84632-74-8

उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

चतुर्थ सेमेस्टर 610

खण्ड 4 – भारतीय साहित्य : प्रायोगिक उपक्रम

पृष्ठ संख्या

इकाई 8 कुमाऊँनी लोक साहित्य का इतिहास एवं स्वरूप

116-133

इकाई 9 कुमाऊँनी लोकगीत: इतिहास, स्वरूप एवं साहित्य

134-151

इकाई 10 गढ़वाली लोक साहित्य का इतिहास एवं स्वरूप

152-166

इकाई 11 गढ़वाली लोक साहित्य का वर्तमान स्वरूप एवं समस्याएँ

167-181

इकाई 12 पंजाबी साहित्य का इतिहास एवं परिचय

182-208

इकाई 13 राजस्थानी साहित्य का इतिहास एवं परिचय

209-238

इकाई 8 कुमाउनी लोकगीत: इतिहास, स्वरूप एवं साहित्य

इकाई की रूपरेखा

- 8.1 प्रस्तावना
- 8.2 उद्देश्य
- 8.3 कुमाउनी लोकगीतों का इतिहास एवं स्वरूप
 - 8.3.1 कुमाउनी लोकगीत : स्वरूप विवेचन
 - 8.3.2 कुमाउनी लोकगीतों का वर्गीकरण
- 8.4 कुमाउनी लोकगीतों का भावपक्षीय वैशिष्ट्य
 - 8.4.1 कुमाउनी लोकगीतों की विशेषताएँ
 - 8.4.2. कुमाउनी लोकगीतों का महत्त्व
- 8.5 कुमाउनी लोकगीतों का संक्षिप्त परिचय
- 8.6 सारांश
- 8.7 शब्दावली
- 8.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 8.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
- 8.10 सहायक ग्रंथ सूची
- 8.11 निबंधात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आप ने कुमाउनी लोकसाहित्य के इतिहास स्वरूप का अध्ययन किया है। प्रस्तुत इकाई कुमाउनी लोकसाहित्य की अनूठी विधा लोकगीत पर आधारित है। लोकसाहित्य का पूर्ण ज्ञान रखने वाले व्यक्ति के लिए लोकगीतों को समझना आसान होगा, क्योंकि लोकसाहित्य की एक विधा लोकगीत भी है। लोकगीत आरंभिक काल से लोक की गहन अनुभूति को प्रकट करते रहे हैं। लोकमानस की जमीन से जुड़ी यथार्थता स्वतः लोकगीतों में प्रस्फुटित हुई है। इस इकाई में हम लोकगीतों के दीर्घकालीन इतिहास पर दृष्टि डालेंगे तथा इसके स्वरूप का विवेचन करते हुए इसके महत्वपूर्ण पक्षों को समझ सकेंगे। कुमाउनी लोकगीतों के महत्त्व को समझकर उनकी सामाजिक प्रासंगिकता का ज्ञान प्राप्त कर पाएंगे। कुमाउनी लोकगीतों के वर्गीकरण से अलग अलग प्रकार के लोकगीतों का परिचय प्राप्त हो सकेगा। इकाई के उत्तरार्ध में कुमाउनी लोकगीतों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया गया है, जिसके माध्यम से हम विविध कुमाउनी लोकगीतों में निहित अनुभूति एवं अभिव्यक्ति विधान सहित स्वरूप को भलि भाँति जान सकेंगे।

8.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- कुमाउनी लोकगीतों का प्रादुर्भाव एवं इतिहास को समझ सकेंगे।
- आप बता पायेंगे कि कुमाउनी लोकगीत आरंभ से लोगों की जुबान पर किस प्रकार अवस्थित रहे हैं।
- कुमाउनी लोकगीतों के वर्गीकरण से आपको कुमाउनी साहित्य का समग्र बोध हो सकेगा।
- कुमाउनी रचनाकारों के अनुभूत ज्ञान का आपको ज्ञान प्राप्त हो सकेगा।
- आप जान सकेंगे कि किस तरह लोकगीत हमारे लोकजीवन की अपूर्व वस्तु है।
- कुमाउनी लोकगीतों की गेयता से आप एक गूढ़ अस्तित्व का भान कर सकेंगे।
- इन लोकगीतों के सामाजिक पक्ष से उद्धाटित होने वाली समरस सरल दृष्टि का अनुशीलन कर पाएँगे।

8.3 कुमाउनी लोकगीतों का इतिहास एवं स्वरूप

कुमाऊँ में लोकगीत प्रारंभ से प्रचलित रहे हैं। कुछ लोकगीत युगो से चली आ रही परंपरा को प्रदर्शित करते हैं तथा कालान्तर में परिनिष्ठित साहित्य के विकास के साथ ही लोकगीतों का अभिनव निर्माण किया जाने लगा। लिखित साहित्य के इतिहास में कुमाउनी लोकगीतों के रचयिता ज्ञात हैं। प्रारंभ से चले आ रहे लोकगीत लोकमानस का स्वच्छंद प्रवाह हैं

प्रायः इनके निर्माता अज्ञात रहते हैं। आपने जिस इकाई का पूर्व में अध्ययन किया है उसमें कुमाउनी साहित्य के उद्भव एवं विकास के अन्तर्गत ज्ञात रचनाकारों की रचनाओं का परिचय दिया गया है। यही लोकगीतों का इतिहास भी है। उन्हीं विकास के चरणों में लोकगीतों की ऐतिहासिक दृष्टि हमें प्राप्त होती है। कुमाऊँ में लोकगीतों का प्रचलन तो आरंभिक काल से रहा है। लिखित साहित्य के रूप में उपलब्ध लोकगीतों को हम ऐतिहासिक रूप से स्वीकार करेंगे, डॉ. त्रिलोचन पाण्डे ने कुमाउनी लिखित साहित्य को निम्नलिखित कालक्रमानुसार विभाजित किया है-

- (1) 19वीं सदी का साहित्य
- (2) 20वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध का साहित्य
- (3) 20वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध का साहित्य

हम उपर्युक्त काल विभाजन को लोकगीतों के क्रम में मान सकते हैं क्योंकि उपर्युक्त काल विभाजन में अस्सी फीसदी लोकगीतों वाली सामग्री हमें प्राप्त होती है। गुमानी कवि को सबसे प्राचीनतम कवि माना जाता है। इनका पुराना नाम लोकरत्न पंत था, इन्होंने लगभग 18 ग्रंथ लिखे जिनमें 'रामनाम पंच पंचाशिका, गंगाशतक, कृष्णाष्टक, नीतिशतक प्रमुख हैं, इनका काल सन् 1790 से 1846 ई. तक माना जाता है। बैर और भगनौल विधा के कुशल प्रणेता कृष्णा पाण्डे (सन् 1800-1850) का जन्म अल्मोड़ा के पाटिया नामक ग्राम में हुआ था, व्यवस्था की बदहाली का वर्णन उनकी कविताओं का मुख्य विषय था। इनकी प्रमुख काव्य रचना 'कृष्णा पाण्डे को कलियुग' है।

नयनसुख पाण्डे अल्मोड़ा के पिलखा नामक ग्राम में जन्मे थे। पहाड़ी स्त्री की मनोदशा पर इन्होंने कई कविताएं लिखीं। 19वीं शताब्दी के अवसान काल में गौरीदत्त पाण्डे का प्रादुर्भाव हुआ। इनका जन्म भी अल्मोड़ा के बल्दीगाड नामक स्थान में हुआ था। इनकी रचना गीदड़ सियार के गीत से प्रसिद्ध हैं। इसके अतिरिक्त इस काल के कवियों में ज्वालादत्त जोशी, लीलाधर जोशी, चिन्तामणि जोशी का नाम उल्लेखनीय है। बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के कवियों ने पद्य रचनाओं के निर्माण में अभूतपूर्व योगदान दिया। शिवदत्त सती इस युग के प्रतिनिधि कवि हैं। इनका जन्म 1870 ई. में फल्दाकोट रानीखेत में हुआ था। इनकी प्रमुख रचनाओं के नाम हैं- बुद्धिप्रवेश, मित्र विनोद, गोपीगीत, नेपाली भाषा के गीत, गोरखाली गीत, भाबर के गीत। गौरीदत्त पाण्डे गौर्दा (सन् 1872-1939) का जन्म अल्मोड़ा के पाटिया ग्राम में हुआ था। इनकी रचनाओं में गांधी दर्शन की स्पष्ट झलक मिलती है। इनकी रचना गौरी गुटका नाम से प्रसिद्ध है। शिरोमणि पाठक (सन् 1890-1955) का जन्म स्थान शीतलाखेत है। इनके द्वारा झौड़े, चांचरी तथा भगनौल लिखे गए। इसके अतिरिक्त इस काल के कवियों में श्यामाचरण दत्त पंत, रामदत्त पंत, चन्द्रलाल वर्मा चौधरी, जीवनचन्द्र जोशी, तारादत्त पाण्डे, जयन्ती देवी पंत, पार्वती उप्रेती, दुर्गादत्त पाण्डे, दीनानाथ पंत, तथा लक्ष्मी देवी के नाम प्रमुख हैं।

स्वतंत्रता के बाद अर्थात् 20वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में सामाजिक जीवन के यथार्थ से जुड़ी चीजें कुमाउनी लोकगीतों के माध्यम से प्रकट होने लगीं। भाषा भी अपने परिष्कार तथा

परिमार्जन की तरफ अग्रसर हुई। स्वतंत्रता आंदोलन के बाद लिखी गई कुमाउनी कविताओं में वैयक्तिक चेतना के अतिरिक्त सामाजिक सुधार के स्वर अधिक मुखरित हुए। इस काल के प्रमुख कवियों में चारूचन्द्र पाण्डे प्रथम कवि माने जाते हैं। इनका जन्म सन् 1923 ई. को हुआ। ब्रजेन्द्र लाल साह का नाम भी 20वीं शताब्दी के उत्तरार्ध के कवियों में आदर के साथ लिया जाता है। इनकी रचनाओं में लोकजीवन की मधुरतम छवि दिखाई देती है। कुमाउनी रामलीला को गेयपूर्ण ढंग से इन्होंने लिखा। इस काल को अद्यतन तक माना जाता है। शेर सिंह बिष्ट 'अनपढ़ इस समय के प्रख्यात रचनाधर्मी रहे। इनकी काव्य प्रतिभा लोगों के मन में नए उत्साहपूर्ण स्वर जाग्रत करती है। शेरदा अनपढ़ की प्रमुख रचनाएं, मोरि लटि पटि, जांठिक घुडुर, हसणै बहार हैं। बंधीधर पाठक जिज्ञासु का जन्म सन् 1934 को हुआ। ये एक कुशल आकाशवाणी के कलाकार थे। इनकी कुमाउनी रचना 'सिसौण' युगीन परिस्थितियों का जीता जागता उदाहरण है। इसके अतिरिक्त देवकी महारा, गोपाल दत्त भट्ट, किसन सिंह बिष्ट, कत्यूरी, रतन सिंह किरमोलिया, देव सिंह पोखरिया, शेर सिंह बिष्ट, दिवा भट्ट, बालम सिंह, जनोटी, त्रिभुवन गिरी, बहादुर बोरा, श्रीबंधु, दीपक कार्की एम0डी0अण्डोला, दामोदर जोशी, देवांशु, विपिन जोशी, श्याम सिंह कुटौला, देवकीनंदन काण्डपाल ने 20वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में परिनिष्ठित कुमाउनी लोकगीतों का प्रणयन किया।

8.3.1 कुमाउनी लोकगीत: स्वरूप विवेचन

लोकगीत शब्द का निर्माण लोक और गीत शब्दों से मिलकर हुआ है। लोकमानस की तरंगायित लयबद्ध अभिव्यक्ति को लोकगीत कहा जाता है। लोक जीवन में व्यक्ति अनेक उतार-चढ़ावों का सामना करता है। जीवन जीने की यही संघर्षपूर्ण अवस्था में व्यक्ति का विवके या मानस उसे कुछ रचने के लिए प्रेरित करता है। अनुभूतियों को व्यक्ति द्वारा शब्दों वाक्यों के रूप में पारिभाषित करने से लोकगीतों का निर्माण हुआ है। डॉ. देवसिंह पोखरिया ने लोकगीतों के संबंध में अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया है- 'लोकमानस की सुख दुखात्मक अनुभूति ही अनपढ़ गेय और मौखिक रूप में लोकगीत के रूप में फूट पड़ती है। साहित्यिक दृष्टि से काव्यात्मक गुणों की अभिजात्यता के अभाव में भी इनका अपना अलग ही नैसर्गिक सौन्दर्य होता है। ये लोकजीवन की धरती से स्वतः स्फूर्त जलधार की तरह होते हैं। इनमें लोकमानस का आदिम और जातीय संगीत सन्निहित रहता है। लोक जीवन के विविध क्रियाकलापों में रसज्ञ रंजन करने वाली अभिवृत्ति को लोकगीत माना जा सकता है।

कुमाउनी लोकगीतों के निर्माण के पीछे यहां की प्रकृति की सुकुमारता तथा निश्छल जनजीवन का बहुत बड़ा हाथ है। अपनी माटी, अपने लोग तथा अपनी संस्कृति के संवाही सुरों ने लोकगीतों की समष्टि रची है। हमारे कुमाउनी आदिकालीन आशु कवि अपने अन्तर्मन की विचाराधारा को बड़ी लयात्मक अभिव्यक्ति के साथ समाज के समक्ष रखते थे। वही निश्छल एवं गेय पूर्ण शैली लोकगीतों के सृजन में उपादेय सिद्ध हुई। यहाँ हम जान पाएंगे कि लोकगीतों में मानवीय संवेदनाओं का पुट रहता है तथा ये सरस जीवन शैली के आधारभूत उपागम भी होते हैं। लोकगीत शब्द का निर्माण लोक और गीत शब्दों से मिलकर हुआ है। लोकमानस की तरंगायित

लयबद्ध अभिव्यक्ति को लोकगीत कहा जाता है। लोक जीवन में व्यक्ति अनेक उतार-चढ़ावों का सामना करता है। जीवन जीने की यही संघर्षपूर्ण अवस्था में व्यक्ति का विवके या मानस उसे कुछ रचने के लिए प्रेरित करता है। अनुभूतियों को व्यक्ति द्वारा शब्दों वाक्यों के रूप में पारिभाषित करने से लोकगीतों का निर्माण हुआ है। डॉ. देवसिंह पोखरिया ने लोकगीतों के संबंध में अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया है- 'लोकमानस की सुख दुखात्मक अनुभूति ही अनपढ़ गेय और मौखिक रूप में लोकगीत के रूप में फूट पड़ती है। साहित्यिक दृष्टि से काव्यात्मक गुणों की अभिजात्यता के अभाव में भी इनका अपना अलग ही नैसर्गिक सौन्दर्य होता है। ये लोकजीवन की धरती से स्वतः स्फूर्त जलधार की तरह होते हैं। इनमें लोकमानस का आदिम और जातीय संगीत सन्निहित रहता है।

लोक जीवन के विविध क्रियाकलापों में रसज्ञ रंजन करने वाली अभिवृत्ति को लोकगीत माना जा सकता है। डॉ. सदाशिव कृष्ण फड़के ने लोकगीत को पारिभाषित करते हुए लिखा है- लोकगीत विद्यादेवी के उद्यान के कृत्रिम फूल नहीं, वे मानो अकृत्रिम निसर्ग के श्वास प्रश्वास हैं। सहजानंद में से उत्पन्न होने वाली श्रुति मनोहरत्व से सहजानंद में विलीन हो जाने वाली आनंदमयी गुफाएं हैं।

रामनरेश त्रिपाठी के विचारों को हम यहां समझ सकते हैं कि ग्रामगीत प्रकृति के उद्गार हैं। इसमें अलंकार नहीं केवल रस है। छंद नहीं केवल लय है। लालित्य नहीं केवल माधुर्य हैं। सभी मनुष्य के स्त्री पुरुषों के मध्य में हृदय नामक आसन पर बैठ कर प्रकृति गान करती है। प्रकृति के वे ही गान ग्राम्य गीत हैं।

कुमाउनी लोकगीतों के निर्माण के पीछे यहां की प्रकृति की सुकुमारता तथा निश्छल जनजीवन का बहुत बड़ा हाथ है। अपनी माटी, अपने लोग तथा अपनी संस्कृति के संवाही सुरों ने लोकगीतों की समष्टि रची है। हमारे कुमाउनी आदिकालीन आशु कवि अपने अन्तर्मन की विचाराधारा को बड़ी लयात्मक अभिव्यक्ति के साथ समाज के समक्ष रखते थे। वही निश्छल एवं गेय पूर्ण शैली लोकगीतों के सृजन में उपादेय सिद्ध हुई। यहाँ हम जान पाएंगे कि लोकगीतों में मानवीय संवेदनाओं का पुट रहता है तथा ये सरस जीवन शैली के आधारभूत उपागम भी होते हैं।

8.3.2 कुमाउनी लोकगीतों का वर्गीकरण

कुमाउनी लोकगीतों के सम्यक अध्ययन के लिए हम उनका वर्गीकरण करेंगे। पूर्व में लोक साहित्यकारों द्वारा किए गए वर्गीकरण को आधार मानकर उनका विषयवस्तुगत भाषायी, प्रकृति, तथा जातिगत आदि आधारों पर वर्गीकरण किया जाना समीचीन प्रतीत होता है। डा. पोखरिया ने कुमाउनी लोकगीतों का वर्गीकरण करते हुए लिखा है- 'वर्ण्य विषय, भाषा क्षेत्र और काव्य रूप आदि की दृष्टि से लोकगीतों के निम्न आधार हो सकते हैं-

- (1) विषयगत आधार (2) क्षेत्रीय आधार (3) भाषागत आधार (4) काव्य रूप गत आधार
- (5) जातिगत आधार (6) अवस्था भेद (7) लिंगगत आधार (8) उपयोगिता का आधार (9) प्रकृति भेद

कुमाउनी के आधिकारिक विद्वानों, विशेष ज्ञों तथा शोधकर्ताओं ने सामान्यतया विषयवस्तु सम्मत आधार को ही अपनाया है। वर्ण्य विषय को स्वीकारते हुए हम अन्य विद्वानों के वर्गीकरण को इस प्रकार समझ पाएंगे-

डॉ. त्रिलोचन पाण्डे का वर्गीकरण

मुक्तक गीत

- I. नृत्य प्रधान -झोड़ा चांचरी छपेली
- II. अनुभूति प्रधान- भगनौल तथा न्यौली
- III. तर्क सम्मत- बैर
- IV. संवाद प्रधान तथा स्फुट

(2) संस्कार प्रधान

- I. अनिवार्य
- II. विशेष

(3) ऋतुगीत

(4) कृषिगीत

(5) देवीदेवता व्रत त्योहार के गीत

(6) बाल गीत

डा. कृष्णानंद जोशी ने कुमाउनी लोकगीतों का वर्गीकरण इस प्रकार किया है-

(1) धार्मिक गीत

(2) संस्कार गीत

(3) ऋतु गीत

(4) कृषि संबंधी गीत

(5) मेलों के गीत

(6) परिसंवादात्मक गीत

(7) बाल गीत

लोकसाहित्य तथा कुमाउनी भाषा साहित्य के विद्वान भवानीदत्त उप्रेती ने विषयस्तुगत आधार को वर्गीकरण के लिए उपयुक्त माना है-

(1) संस्कार गीत

(2) स्तुति पूजा और उत्सव गीत

(3) ऋतु गीत

(4) जाति विषयक गीत

(5) व्यवसाय संबंधी गीत

(6) बाल गीत

(7) मुक्तक गीत

विभिन्न विद्वानों द्वारा किए वर्गीकरण से स्पष्ट होता है कि लगभग सभी विद्वानों ने विषय को ही वर्गीकरण का आधार माना है। यहां हम वर्गीकरण के लिए विषयवस्तुगत आधार का चयन करेंगे तथा विभिन्न लोकगीतों की मौलिक प्रवृत्तियों से अवगत हो सकेंगे।

धार्मिक पुराण कालीन संदर्भित लोकगीत- पुराण काल की कथाओं एवं आख्यानों को आरंभिक दौर से लोकगीतों के माध्यम से अभिव्यक्त किया जाता रहा है। कृष्णानंद जोशी ने धार्मिक गीतों के विषय में लिखा है- इन गीतों में सर्वप्रथम वे गीत आते हैं, जिनकी विषयवस्तु पौराणिक आख्यान से संबंधित है। इसी प्रकार के एक गीत में वर्णित है वह क्षण जब सृष्टिकार ने महाशून्य में हंस का एक जोड़ा प्रकट किया और हंसिनी का अंडा गिरकर फूटने से एक खंड से आकाश बना और दूसरे से धरती। इसी प्रकार महाभारत काल के कौरव पाण्डवों की कथा के अंश लोकगीतों के माध्यम से प्रकट किए जाते रहै हैं। रामचरित मानस में उल्लिखित श्रीरामचन्द्र जी कथा का वर्णन भी इन गीतों के माध्यम से देखे जा सकते हैं।

उदाहरणार्थ

बाटो लागी गया मुनि तपसिन

जै पिरथी राजा को रैछ एक पूत

तिनरा देश वैछ बार बिसी हलिया, बार बीसी बौसीया

रोपन का खेत भगवान कूल टुटी भसम पड़ी गेछ,

लोकमानस की महाभारत कालीन प्रस्तुति इन पंक्तियों में देखी जा सकती है-

पांडवन की लछण बिराली, कौरवन की पहाड़ी कुकुड़ी,

तेरी बिराली कुकुड़ी ब्यूज बैरछ बिराली कुकुड़ी मारी दीयो ।

इन गीतों में पौराणिक कथा सार की अभिव्यक्ति को हम सरलता से समझ सकते हैं।

संस्कार गीत- मनुष्य के जीवन में संस्कारों का बड़ा महत्त्व है। बच्चे के जन्म से लेकर मृत्यु तक विविध संस्कार सम्पन्न किए जाते हैं। कुमाउनी संस्कार गीतों में जन्म छठी, नामकरण उपनयन विवाह आदि के गीत सम्मिलित हैं, ये गीत प्रायः महिलाओं द्वारा गाए जाते हैं। संस्कारों में होने वाली पूजा अनुष्ठान के अनुसार इन गीतों को गाया जाता है। यहां हम कुछ कुमाउनी संस्कार गीतों को संक्षेप में जानने का प्रयास करेंगे। कुमाऊँ में प्रत्येक सुअवसर पर शकुनांखर सगुण (सगुन) के गीत गाने की परंपरा है।

ध्यायनु भयै, ध्यायनु भैये, थाति को थत्याल

ध्यायनु भयै, ध्यायनु भैय, भुई को भूम्याल

बच्चे के जन्म के अवसर पर यह गीत गाया जाता है।

धन की धौताला, धन की धौ,

धन की धौताला धन की धौ,

यरबा सिर सिड़ जोड़ सिरसिड़

पाडव्वा बाबै जोड़ जोड. बावै

विवाह के समय फाग के गीतों की विशेष परंपरा देखी जा सकती है।

पैलिक सगुन पिडली पिठाक

उति है सगुन दर्ई दर्ई माछा

पिड.ली पिठाक कुटल है

खनल पनीया ध्वेज उखल कुटल

ऋतु गीत- विभिन्न ऋतुओं के आगमन पर कुमाऊं में लोकगीत प्रचलित हैं, बसंत ऋतु के आगमन पर लोगों का तनमन सुवासित हो जाता है। उसी प्रकार वर्षा ऋतु के आगमन पर भी मन में उठने वाली तरंगे नया आभास जगाती है। ऋतु गीतों में विरह वेदना प्रकृति के नाना रूपों का वर्णन समविष्ट रहता है। आप ऋतुराज बसंत के यौवन को इस गीत में देख सकते हैं।

रितु ऐ गे हैरी फेरी ओ गरमा रितु,

मारीया मानीख पलटी नी ऊंनो।

इन गीतों में अपने प्रियजनों की स्मृति, निराशा तथा भावुकता देखी जा सकती है।

कृषि विषयक गीत- कुमाऊं में कृषि विषयक गीतों को हुड़की बौल के नाम से जाना जाता है।

प्राचीन विचाराधारा के अनुसार कृषि कार्यों में तत्परता तथा एकाग्रता के लिए मनोरंजक गीत सुनाए जाने का प्रचलन है। हुड़की बौल में एक व्यक्ति हुड़के की थाप पर गाता हुआ आगे बढ़ता रहता है तथा कृषि कार्य निराई गुड़ाई या रोपाई करने वाले लोग कार्य करते हुए बड़ी लगन से बौल लगाने वाले के स्वर को दुहराते हैं, इसमें कार्य भी जल्दी सम्पन्न हो जाता है तथा मनोरंजन के द्वारा लोगों को थकान का अनुभव नहीं होता है। हुड़कि बैल में ऐतिहासिक लघु गाथाएं गायी जाती हैं।

लोकोत्सव एवं पर्व संबंधी गीत:- लोक के विविध उत्सवों, पर्वों पर जो गीत गाए जाते हैं, उनमें लोक मनोविज्ञान तथा लोकविश्वास के लक्षण पाए जाते हैं। स्थानीय पर्वों फूलदेई तथा घुघुतिया को प्रथागत आदर्शों के साथ मनाया जाता है। फूल संक्रान्ति के अवसर पर बच्चे गांव के प्रत्येक घर के दरवाजे पर सरसों तथा फूलदेई के फूल अर्पित करते हुए कहते हैं-

फूल देई छममा देई

भरभकार दैणी द्वारा

जतुकै दिछा उतुकै सई

फूल देई छम्मा देई

घुघुतिया (मकर संक्रान्ति) को बच्चे आटे के बने घुघुतों की माला गले में डालकर प्रातः कौवे को बुलाते हैं-

‘काले कौवा काले काले काले

घुघुती मावा खाले खाले खाले

तु ल्हि जा बड़ म्यकै दिजा सुनु घड़

काले कौवा काले काले काले

कुमाऊं में हरेला पर्व हरियाली का प्रतीक है। हरेले के त्यौहार में हरेला आशीश के रूप में सिर पर रखा जाता है। इस अवसर पर आशीर्वचन देते हुए कहते हैं-

हर्याली रे हर्याली हरिया बण जाली

दुबड़ी कैँछ दुबै चड़ि जूलो

चेली कैँछ मैं मैतुलि जूलो, आओ चेलि खिलकन मैत

तुमारे बाबू घर, तुमारे भइयन घर हरयाली को त्यार

विभिन्न प्रकार के पर्वोत्सवों पर गाए जाने वाले इन गीतों में उद्धोधन तथा आशीर्वाद के भावों को देखा जा सकता है।

मेलों के गीत:- मेला शब्द की उत्पत्ति मेल से हुई है। कुमाऊँ में विभिन्न प्रकार के मेले आयोजित होते आए हैं। इन मेलों में लोग पारस्परिक मेल मिलाप करते हैं। प्राचीन काल से ज्ञानी लोग मेले में अपनी कवित्व शक्ति का प्रदर्शन करते आए हैं। इनमें सामूहिक नृत्यगीत भी शामिल हैं। यहां पर हम देखेंगे कि मेलों के माध्यम से सामूहिक गायन पद्धति से लोग मनोरंजन करते हैं। इन गीतों में झोड़ा, चांचरी, छपेली, भगनौल और बैर का प्रचलन है। हुड़के की थाप पर लोग एक दूसरे से श्रृंखलाबद्ध होकर थिरकते दिखाई देते हैं। इन लोकगीतों में स्थानीय देवी देवताओं की स्तुति के साथ-साथ प्राचीन वैदिक कालीन संदर्भ कथाओं का गायन भी किया जाता है। झोड़ा और चाँचरी में गोल घेरे में कदम से कदम मिलाकर नृत्य किया जाता है। इसमें लयबद्ध तरीके से गायन पद्धति अपनाई जाती है।

चौकोटे कि पारवती स्कूल नि जानि बली इस्कूला नि जानी ,

मासी का परताप लौंडा स्कूल नि जानि बली इस्कूलनि जाना।

छपेली नृत्य में द्रुत गायन शैली अपनाई जाती है। ओहो करके गीत शुरू किया जाता है। भगनौल में पद्यात्मक उक्तियों को आरोह अवरोह के साथ प्रस्तुत किया जाता है। इन उक्तियों को गेयपदों में जोड़ने वाली गीत शैली जोड़ के रूप में जानी जाती है। बैर में युद्धों का वर्णन किया जाता है। इसमें तार्किक कथनों के द्वारा एक दूसरे को निरुत्तर करने की प्रतियोगिता होती है।

परिसंवादात्मक गीत- संवाद शैली से युक्त गायन पद्धति को परिसंवादात्मक गीतों की श्रेणी में रखा जाता है। इन गीतों में संवादों के माध्यम से विभिन्न पात्रों के कौशल को जाना जा सकता है। डॉ कृष्णानंद जोशी के अनुसार- 'हरियाला का त्यौहार आने पर एक माँ अपनी बिटिया को मायके बुलाने का अनुरोध करती है- कन्या के पिता के जाते समय के अपशकुन माँ के हृदय को दुखित कर देते हैं। बेटी के ससुराल जाकर पिता को बताया जाता है कि 'रघी' घास लकड़ी लाने जंगल गई हुई है, पानी भरने गई हुई है आदि। रघी के पिता बेटी की प्रतीक्षा में बैठे रहते हैं। उस रघी को, जो अब कभी नहीं लौटेगी, गीत के दूसरे भाग में वह दृश्य 'फ्लैश बैक' के रूप में प्रस्तुत किया गया है। जिसमें रघी की ननद अपनी माँ से अनुरोध करती है कि पोटली में रखे च्यूले उसने खाए हैं। रघी ने नहीं, रघी को मत पीटो। ओ क्रूर माँ! तुमने रघी को मारकर उसका शव तक गोठ में छिपा दिया।

खाजा कुटुरी मैले लुकैँछ ईजू पापिणी बोजि नै मार,

पाना मारीछ गोठ लुकैँछ, ईजू पापिणी बोजि नै मार।

साग काटछ राम करेली, ईजू पापिणी बोजि नै मार।

इन गीतों में लोक जीवन की मर्यादा का भाव देखा जा सकता है। हमें पता चलता है कि तत्कालीन परिस्थितियों में मानवीय व्यवहार के तौर तरीकों में कितनी असभ्यता थी। कुछ ऐतिहासिक लोक कथाओं के आख्यान भी हम इन संवाद प्रधान गीतों के माध्यम से जान सकेंगे। **बाल गीत** - व्यक्ति के जीवन की शुरुआत बचपन से होती है। बालपन में शिशु का मन निश्छल होता है। वह खेलना पसंद करता है। जीवन के गंभीर उतार चढ़ावों से अनभिज्ञ शिशु अपनी किलकारियों में ही खेल का अनुभव करता है। बच्चों द्वारा आपस में खेले जाने वाले खेलों में ही गीत विकसित होते हैं। इन गीतों का निर्माण स्वतः स्फूर्त माना जाता है। यथा -

डक्की डक्की मुक्का पड़ौ
ओ पाने ज्यू भ्यो पड़ो
सात समुन्दर गोपी चन्द्र
बोल मेरी मछली कितना पानी
(दूसरी कहती है) इतना पानी

बच्चे गीतों के साथ साथ अपने भावों को हाथ हिलाकर भी प्रकट करते हैं। कहना उचित होगा कि बालगीत बच्चों के सुकोमल मनोविज्ञान की स्वच्छंद सरल अभिव्यक्ति है। जिनमें किसी गंभीर विषय बोध की सदा अनुपस्थिति रहती है।

बोध प्रश्न

क - सही विकल्प को चुनिए -

1. 'फूल देई छम्मा देई' लोकगीत की किस कोटि में आता है?
 - I. बालगीत
 - II. नृत्यगीत
 - III. पर्व संबंधी गीत
 - IV. भगनौल
2. 'गौरी गुटका' नामक रचना है -
 - I. गुमानी पंत
 - II. रामदत्त पंत
 - III. गौरीदत्त पाण्डे
 - IV. शेरसिंह विष्ट
3. ऋतुओं का वर्णन किस गीत में मिलता है ?
 - I. संस्कार गीत
 - II. ऋतु गीत
 - III. कृषि संबंधी गीत
 - IV. पर्व उत्सव संबंधी गीत

ख - 20 वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के लोकगीतों का इतिहास संक्षेप में लिखिए।

ग - लोकगीत क्या हैं ? विषयगत आधार पर लोकगीतों का वर्गीकरण कीजिए।

घ - 'झोड़ा' और 'भगनौल' पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

8.4 कुमाउनी लोकगीतों का भावपक्षीय वैशिष्ट्य

हम सब जानते हैं कि लोकगीत लोकमानस की वह तरंगायित अभिव्यक्ति है, जो नियति और मानवीय सत्ता के विविध रूपों को समाहित किए रहती है। मानव ने भौतिक विकास के सापेक्ष मानसिक विकास के द्वारा समाज में अपने अस्तित्व को मुखर किया है। लोकगीत लोकमानस के संवेदना के मौलिक तत्व हैं। अनुभूति तथा ज्ञान की लयबद्ध अभिव्यक्ति प्रायः लोकगीतों के माध्यम से प्रकट होती है।

भावपक्ष की दृष्टि से हम देखते हैं कि गीतों का निर्माण ही भाव भूमि पर हुआ है। ये वही भाव हैं, जो प्रकृति के नाना रूपों में, व्यथा, वेदना, हर्ष, विषाद आदि के रूपों में शब्दों में स्वतः उतर आते हैं। इनकी यही लयात्मक प्रवृत्ति इनको रोचक बनाए हुए है। लोकगीतों में व्यष्टि और समष्टि का अपूर्व मिश्रण होता है, जो समाज के चेतनामूलक फलक को प्रभावित कर उसे सरस बना देता है। अतः हम कह सकते हैं कि व्यक्ति की सुख दुखात्मक स्थितियों में अन्तर्मन से जो वाणी फूट पड़ती है तथा लोक के लिए एक रूचिकर शैली बन जाती है, वही लोकगीत कहलाता है।

8.4.1 कुमाउनी लोकगीतों की विशेष ताएँ

कुमाउनी लोकगीत कुमाऊँ के जनमानस की व्यापक संवेदनशीलता को प्रकट करते हैं। वाचिक तौर पर वर्षों से जीवित इन गीतों में अपनी माटी की सुगंध निहित है। ये गीत मानव को मानव से जोड़ने में यकीन रखते हैं। कहीं कहीं आप पाएँगे कि इन गीतों में पौराणिक चरित्रों का चित्रण भी हुआ है। वैदिक कालीन समाज व्यवस्था तथा प्रमुख पात्र एवं घटनाओं से संबंधित आख्यान इन लोकगीतों के आधार बनें हैं। सत्य की अनुभूति लोकगीतों के माध्यम से स्पष्ट झलकती है।

इन गीतों में पहाड़ के पशुपक्षियों तथा प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन देखने को मिलता है। 'न्यौली' नामक लोकगीत एक विरही पक्षी पर आधारित है। न्यौली एक पहाड़ी प्रजाति की कोयल को कहा जाता है। इसे विरह का प्रतीक माना जाता है। ऐसी धारणा है कि न्यौली अपने पति के वियोग में दिन रात मर्मन्तक स्वरों से जंगल को गुंजायमान बनाती फिरती है। लोकमानस ने उस पक्षी को अपने संवेदना के धरातल पर उकेरा है। सामान्य अर्थों में न्यौली का अर्थ 'नवेली' 'नई' से लिया जाता है।

कुमाउनी लोकगीत विभिन्न धार्मिक संस्कारों के संवाहक हैं। गर्भाधान, नामकरण, अन्नप्राशन, जनेऊ, विवाह आदि संस्कारों में गाए जाने वाले लोकगीत युगों से चली आ रही वाचिक परंपरा के सत्यानुभूत कथन हैं। लोकगीतों की विशेषता उनके लयात्मक गायन शैली में निहित है। प्रेम, करुणा, विरह आदि की अवस्थाओं पर कई लोकगीत समाज में प्रचलित हैं।

डॉ. त्रिलाचन पाण्डे ने कुमाउनी लोकगीतों की विशेषता को बताते हुए कहा है - 'कुमाऊँ में जमींदार प्रथा तो नहीं है, फिर भी कुछ लोगों के पास बहुत जमीन हो गई है। दूसरे लोग बटाई

पर काम करते हैं। जमीन भी 'तलाऊँ', मलाऊँ, आबाद, बंजर कई प्रकार की है। नदियों की घाटियों वाली भूमि अधिक उत्पादक होती है, जिसे 'स्यारा' कहते हैं। दलदली भूमि 'सिमार' कहलाती है। इसकी उत्पादक क्षमता को ध्यान में रखकर जो लगान वर्षों पूर्व अंग्रेजों द्वारा निर्धारित किया गया या उसमें समय पर परिवर्तन होते गए। अब कुछ वर्ष पूर्व भूमि नाप संबंधी नई योजना प्रारंभ हुई तो कुछ लोग अपनी जमीन बढ़ा चढ़ाकर लिखाने लगे। कुछ पीछे रह गए। गीतकारों ने इस स्थिति की सटीक व्याख्या की है।

इस प्रकार आप देखेंगे कि कुमाउनी लोक गीत स्वयं में अनेक विशेषताओं को समेटे हैं। लौकिक ज्ञान की धरातल से जुड़ी प्रस्तुतियाँ इन गीतों के माध्यम से होती हैं। इन गीतों में कल्पना भी चरम सीमा पर होती है। इन गीतों में अपने समय की सजीवता है। मानव व्यवहार के तौर तरीकों तथा समाज मनोविज्ञान के कई तथ्य इन गीतों द्वारा अभिव्यक्त होते आए हैं। प्रकृति के नाना रूपों का वर्णन इन गीतों का प्रमुख प्रतिपाद्य होता है। लोक सत्य के उद्घाटन में ये गीत अग्रणी हैं। प्राचीन काल की रोचक एवं ज्ञानवर्धक ज्ञान की समाविष्टि इन गीतों का स्वभाव है।

अतः कहा जा सकता है कि कुमाउनी लोकगीतों की विशेषता यहाँ के जनमानस की सांगीतिक प्रस्तुति है। ये विषय वैविध्य का लक्षण प्रदर्शित करते हैं। वर्गीकरण के आधार पर अलग अलग विषयों के लोकगीतों में तत्कालीन परिस्थितियों का वर्णन हुआ है, जिनके द्वारा समाज को मानसिक जगत में बहुत लाभ प्राप्त हुआ है।

8.4.2 कुमाउनी लोकगीतों का महत्त्व

कुमाउनी लोकगीतों द्वारा मनुष्य के भावों को प्रकट करने की तरल क्षमता प्रकट होती है। ये लोकगीत समाज का उचित मनोरंजन करते हैं। साथ ही इनमें अपने समय को व्यक्त करने की पर्याप्त क्षमता होती है। प्रोफेसर देवसिंह पोखरिया ने 'कुमाउनी संस्कृति के विविध आयाम' पुस्तक में संतराम अनिल के विचारों को प्रकट करते हुए लिखा है – 'लोकगीत साहित्य की अमूल्य और अनुपम निधि हैं। इनमें हमारे समाज की एक एक रेखा, सामयिक बोध की एक एक अवस्था, सामूहिक विजय पराजय, प्रकृति की गति, विधि, वृक्ष, पशु, पक्षी और मानव के पारस्परिक संबंध बलि, पूजा, टोने टुटके, आशा, निराशा, मनन और चिन्तन सबका बड़ा ही मनोहारी वर्णन मिलता है।'

लोकगीतों के महत्त्व को निम्नलिखित बिन्दुओं द्वारा समझा जा सकता है -

- (1) लोकगीतों में युगीन परिस्थितियों का वर्णन मिलता है।
- (2) ये गीत मानवी संवेदना के हर्ष - विषाद, सुख दुःख तथा काल्पनिकता को अभिवृद्ध करते हैं।
- (3) लोकगीतों में सामाजिक परिवेश को सरस बनाने की कला होती है।
- (4) लोकगीतों में गीति तत्व तथा लय होने से ये वाचिक परंपरा के मनोहारी आख्यान कह जाते हैं।
- (5) लोकगीत मानव समाज को आदिम परंपरा से सभ्य समाज की तरफ अग्रसर करते हैं।

- (6) लोकगीतों में मौलिकता होती है, जो व्यक्ति के जीवन के यथार्थ स्वरूप को सामने लाती है।
- (7) कुमाऊँ में प्रचलित लोकगीतों में प्रत्येक युगानुसार उनकी विकासवादी धारणा को समझा जा सकता है।
- (8) ये कार्य संपादन के तरीकों में प्रयुक्त होकर कार्य का निष्पादन त्वरित गति से करते हैं।

स्पष्टतः लोकगीतों में समाज के विभिन्न जातियों, धर्मों, अनुष्ठानों तथा उनके तौर तरीकों पर प्रकाश पड़ता है। हम लोकगीतों के माध्यम से समाज की तत्कालीन स्थिति को सरलता से जान सकते हैं।

बोधात्मक प्रश्न

क - नीचे दिए गए प्रश्नों में सही विकल्प चुनकर लिखिए -

1. लोकगीत की वह पद्धति जिसमें स्त्री पुरुष एक दूसरे के कंधे में हाथ डालकर गोलाकार भाग में कदम मिलाकर चलते हैं कहलाती है -

- I. बैर
- II. जागर
- III. झोड़ा
- IV. जोड़

2 - संवादक मूलक लोकगीत है -

- I. झोड़ा
- II. छपेली
- III. चाँचरी
- IV. बैर

3. संस्कारों के अवसर पर गाए जाने वाले गीत हैं -

- I. छपेली
- II. भगनौल
- III. फाग
- IV. होली के गीत

(4) लोकगीतों के महत्त्व पर प्रकाश डालिए

(5) कुमाउनी लोकगीतों के वर्गीकरण का सबसे सरल और व्यावहारिक आधार कौन सा है? लोकगीतों का वर्गीकरण प्रस्तुत कीजिए।

8.5 कुमाउनी लोकगीतों का संक्षिप्त परिचय

कुमाउनी लोकगीत प्राचीन काल से वर्तमान काल तक लोकजीवन में निर्बाध रूप से प्रचलित रहे हैं। आरंभिक काल से चली आ रही लोकगीतों की परंपरा में यहाँ के जनमानस की

प्रकृतिपरक , मानवीय संवेदना, विरह एवं मनोरंजन का पुट स्पष्ट झलकता है। पर्वतीय जीवन शैली को आप इन सुरधाराओं में आसानी से पा सकते हैं। पशु पक्षियों का आलंबन लेकर उसे मानवीय सत्ता से जोड़कर लोकगीतों को मर्मस्पर्शी बनाया गया है। कुमाऊँ क्षेत्र में प्रचलित लोकगीतों में समय के साथ आए बदलाव को भी परखा जा सकता है। लोकवाणी की तर्ज पर जिन प्राचीन गीतों में प्रकृति सम्मत आख्यान मिलते हैं, वहीं आधुनिक लोकगीतों में नए जमाने की वस्तुओं, फैशन का उल्लेख मिलता है। नए लोकगीत व्यावसायिक दृष्टिकोण से बनाए तथा गाए जाते हैं। इन गीतों का ध्वनिमुद्रण उच्च इलेक्ट्रॉनिक तकनीक पर आधारित होता है। इसका एक प्रमुख कारण यह भी है कि कुमाऊँवासी पहाड़ को छोड़कर मैदानी इलाकों को पलायन कर रहे हैं। मैदानी शहरी जिन्दगी में उन्हें ये लोकगीत पहाड़ी भाषा की मनोरंजक स्मृति मात्र का सुख देते हैं। फिर भी कुछ लोग मौलिक प्राचीन वाचिक परंपरा को अपनाने में ही विश्वास रखते हैं। कुमाउनी लोकसाहित्य के मर्मज्ञ डॉ. देवसिंह पोखरिया तथा डॉ. डी. डी. तिवारी ने अपनी संपादित पुस्तक 'कुमाउनी लोकसाहित्य' में न्यौली, जोड़, चाँचरी, झोड़ा, छपेली, बैर तथा फाग का विशद वर्णन किया है। यहाँ हम इन लोकगीतों को संक्षेप में समझने का प्रयास करेंगे।

न्यौली - न्यौली एक कोयल प्रजाति की मादा पक्षी है। ऐसा माना जाता है कि यह न्यौली अपने पति के विरह में निविड़ जंगल में भटकती रहती है। शाब्दिक अर्थ के रूप में न्यौली का अर्थ नवेली या नये से लगाया जाता है। कुमाऊँ में नई बहू को नवेली कहा जाता है। सुदूर घने बांज, बुरांश के जंगलों में न्यौली की सुरलहरी को सहृदयों ने मानवीय संवेदनाओं के धरातल पर उतारने का प्रयास गीतों के माध्यम से किया है। न्यौली की गायनपद्धति में प्रकृति, ऋतुएँ, नायिका के नख शिख भेद निहित हैं। छंदशास्त्र के दृष्टिकोण से न्यौली को चौदह वर्णों का मुक्तक छंद रचना माना जाता है।

न्यौली का उदाहरण -

चमचम चमक छी त्यार नाकै की फूली
धार में धेकालि भै छै, जनि दिशा खुली
(तेरे नाक की फूली चमचम चमकती है, तुम शिखर पर प्रकट क्या हुई ऐसा लगा कि जैसे दिशाएँ खुल गई हों)

जोड़ - जोड़ का अर्थ जोड़ने से है। गणित में दो और दो चार होता है। कुमाउनी लोकसाहित्य में जोड़ का अर्थ पदों को लयात्मक ढंग से व्यवस्थित करना है। संगीत या गायन शैली को देखते हुए उसे अर्थलय में ढाला जाता है। जोड़ और न्यौली लगभग एक जैसी विशेषता को प्रकट करते हैं। द्रुत गति से गाए जाने वाले गीतों में हल्का विराम लेकर 'जोड़' गाया जाता है। जोड़ को लोकगायन की अनूठी विधा कहा जाता है।

उदाहरण -

दातुलै कि धार दातुलै की धार
बीच गंगा छोड़ि ग्यैयै नै वार नै पार
(अर्थात् दराती की धार की तरह बीच गंगा में छोड़ गया, जहाँ न आर है न पार)

चाँचरी - चाँचरी शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के 'चर्चरी' से मानी गई है। इसे नृत्य और ताल के संयोग से निर्मित गीत कहा जाता है। कुमाऊँ के कुछ भागों में इसे झोड़ा नाम से भी जाना जाता है। 'चाँचरी' प्रायः पर्व, उत्सवों और स्थानीय मेलों के अवसर पर गाई जाती है। यह लोकगीत गोल घेरा बनाकर गाया जाता है, जिसमें स्त्री पुरुष पौरो एवं संपूर्ण शरीर को एक विशेष लय क्रमानुसार हिलाते डुलाते नृत्य करते हैं। चाँचरी प्राचीन लोकविधा है। मौखिक परंपरा से समृद्ध हुई इस शैली को वर्तमान में भी उसी रूप में गाया जाता है। चाँचरी में विषय की गहनता का बोध न होकर स्वस्थ मनोरंजन का भाव होता है, जो लोगों को शारीरिक और मानसिक रूप से लाभ पहुँचाता है।

उदाहरण - काठ को कलियों तेरो छम

(वाह! का कलेजा तेरा क्या कहने)

चाँचरी में अंत और आदि में 'छम' का अर्थ बलपूर्वक कहने की परंपरा है। छम का अर्थ घुघरूँ के बजने की आवाज को कहा जाता है। छम' कहने के साथ ही चाँचरी गायक पैर व कमर को झुकाकर एक हल्का बलपूर्वक विराम लेता है।

झोड़ा - जोड़ अर्थात् जोड़ा का ही दूसरा व्यवहृत रूप है झोड़ा। कुमाउनी में 'झ' वर्ण की सरलता के कारण 'ज' वर्ण को 'झ' में उच्चरित करने की परंपरा है। झोड़ा या जोड़ गायक दलों द्वारा गाया जाता है। एक दूसरे का हाथ पकड़कर झूमते हुए यह गीत गाया जाता है। इसे सामूहिक नृत्य की संज्ञा दी गई है। किसी गाथा में स्थानीय देवी देवताओं की स्तुति या किसी गाथा में निहित पराक्रमी चरित्रों के चित्रण की वृत्ति निहित होती है।

उदाहरण -

ओ घटे बुजी बाना घटे बुजी बाना

पटि में पटवारि हुँछौ गौं में पधाना

आब जै के हुँ छै खणयूणी बुडियै की ज्वाना

(नहर बांध कर घराट (पनचक्की) चलाई गई पट्टी में पटवारी होता है गांव में होता है प्रधान अब तू बूढ़ी हो गई है कैसे होगी जवान)

छपेली - छपेली का अर्थ होता है क्षिप्र गति या त्वरित अथवा द्रुत वाकशैली से उद्भूत गीत । यह एक नृत्य गीत के रूप में प्रचलित है। लोक के तर्कपूर्ण मनोविज्ञान की झलक इन गीतों में आप आसानी से पा सकते हैं। लोकोत्सवों, विवाह या अन्य मेलो आदि के अवसर पर लोक सांस्कृतिक प्रस्तुति के रूप में इन नृत्य गीतों को देखा जा सकता है। छपेली में एक मूल गायक होता है। शेष समूह के लोग उस गायक के गायन का अनुकरण करते हैं। स्त्री पुरुष दोनों मिलकर छपेली गाते हैं। मूल गायक प्रायः पुरुष होता है, जो हुड़का नामक लोकवाद्य के माध्यम से अभिनय करता हुआ गीत प्रस्तुत करता है।

छपेली में संयोग विप्रलम्भ श्रृंगार की प्रधानता होती है। प्रेम की सच्ची भावना को सुमधुर ढंग से गायकी में अभिव्यक्त किया जाता है।

उदाहरण - भाबैरै कि लाई

भाबर की लाई

कैले मेरि साई देखि

लाल साड़ि वाई

(भाबर की लाही भाबर की लाही किसी ने मेरी लाल साड़ी वाली साली देखी)

बैर - बैर शब्द का प्रयोग प्रायः दुश्मनी से लिया जाता है। लोकगायन की परंपरा में बैर का अर्थ 'द्वन्द्व' या 'संघर्ष' माना गया है। बैर तार्किक प्रश्नोत्तरों वाली वाक् युद्ध पूर्ण शैली है। इसमें अलग अलग पक्षों के बैर गायक गूढ़ रहस्यवादी प्रश्नों को दूसरे पक्ष से गीतों के माध्यम से पूछते हैं। दूसरा पक्ष भी अपने संचित ज्ञान का समुद्राटन उत्तर के रूप में रखता है। बैर गायक किसी भी घटना, वस्तुस्थिति अथवा चरित्र पर आधारित सवालों को दूसरे बैरियों के समक्ष रखता है। अन्य बैर गायक अपनी त्वरित बुद्धि क्षमता से इन प्रश्नों का ताबड़तोड़ उत्तर देकर उसे निरुत्तर करने का प्रयास करते हैं। कभी कभार इन बैरियों में जबरदस्त की भिड़न्त देखने को मिलती है। हार जीत के लक्ष्य पर आधारित इस गीत का परस्पर संवादी क्रम बड़ा ही रोचक होता है। इनके प्रश्नों में ऐतिहासिक चरित्र एवं घटना तथा मानवीय प्रकृति के विविध रूप समाविष्ट रहते हैं।

फाग - कुमाउनी संस्कृति में विभिन्न संस्कारों के अवसर पर गाए जाने वाले मांगलिक गीतों को 'फाग' कहा जाता है। कही कही होली के मंगलाचरण तथा धूनी के आशीर्वाद लेते समय भी फाग गाने की परंपरा विद्यमान है। शुभ मंगल कार्यों यथा जन्म एवं विवाह के अवसर पर 'शकुनाखर' और फाग गाने की अप्रतिम परंपरा है। 'फाग' गायन केवल स्त्रियों द्वारा ही होता है। होली के अवसर पर देवालियों में 'फाग' पुरुष गाते हैं। कुमाऊँ में संस्कार गीतों की दीर्घकालीन परंपरा को हम 'फाग' के रूप में समझते हैं। फाल्गुन मास के आधार पर ही 'फाग' का प्रादुर्भाव माना जाता है। मनुष्य के गर्भाधान, जन्म, नामकरण, यज्ञोपवीत, चूड़ाकर्म विवाह आदि संस्कारों के अवसर पर यज्ञ अनुष्ठान के साथ इन गीतों का वाचन किया जाता है। गीत गाने वाली बुजुर्ग महिलाओं को 'गीदार' कहा जाता है।

उदाहरण - शकूना दे, शकूना दे सब सिद्धि

काज ए अति नीको शकूना बोल दर्शणा

(शकुन दो भगवान शकुन दो सब कार्य सिद्ध हो जाएँ सगुन आखर से सारे काज सुन्दर ढग से सम्पन्न हो जाएँ)

बोध प्रश्न

अति लघुउत्तरीय प्रश्न

- 1- 'न्यौली' का एक उदाहरण दीजिए।
- 2- फाग किस रूप में गाए जाते हैं ?
- 3- झोड़ा किस प्रकार गाया जाता है ?
- 4- चाँचरी से क्या तात्पर्य है ?

8.6 सारांश

- प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के उपरांत आप -
- कुमाउनी लोकगीतों का अर्थ स्वरूप तथा इतिहास समझ गए होंगे।
 - आपने समझ लिया होगा कि विषयवस्तुगत आधार पर वर्गीकरण करने से आपके अध्ययन की रूपरेखा सरल और स्पष्ट हो गई है।
 - कुमाउनी भाषा और बोलियों के लयात्मक स्वरूप को जान गए होंगे।
 - कुमाऊँ में प्रचलित लोकगीतों की विशेष ताएँ और महत्त्व को समझ चुके होंगे।
 - प्रमुख कुमाउनी लोकगीतों का परिचय प्राप्त कर चुके होंगे।

8.7 शब्दावली

आशु	-	मौखिक
उद्गार	-	प्रकट होने वाले भाव
निश्छल	-	छल रहित
उपोदय	-	उपयोगी
स्फुट	-	अन्य, प्रकीर्ण
सन्निहित	-	समाया हुआ
गीदार	-	गीतकार
शकुनाखर	-	सगुन के आखर
न्यौली	-	नवेली, नई
अप्रतिम	-	अनूठी, अनोखी
फाग	-	संस्कार गीत
बैर	-	संघर्ष
छपेली	-	क्षिप्रगति वाली

8.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

8.3 के उत्तर

1- पर्व संबंधी गीत

2- गौरीदत्त पाण्डे

3 - ऋतु गीत

8.4 के उत्तर

क (1) झोड़ा

(2) बैर

(3) फाग

8.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. जोशी, कृष्णानंद, कुमाउनी लोकसाहित्य, धार्मिक गीत, 112
2. पूर्वोक्त, संस्कार गीत (1)
3. पाण्डे त्रिलोचन, कुमाऊँ का लोकसाहित्य, पृ -124,
4. पूर्वोक्त, पृ - 126
5. अचल, जुलाई 1938, श्रेणी - 1, श्रृंग - 6,
6. इंडियन एंटीक्वेरी, जिल्द 14 (1885)
7. धर्मयुग, अक्टूबर 31, 1954,
8. लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया, खंड 9, भाग 4, पृ -167.
9. कुमाउनी लोकसाहित्य, देवसिंह पोखरिया, डी.डी. तिवारी, पृ 2- 12
10. पाण्डे, त्रिलोचन, कुमाउनी भाषा और उसका साहित्य, उत्तर प्रदेश, हिन्दी संस्थान, पृ - 190- 211
11. बटरोही, कुमाउनी संस्कृति, पृ - 13-25
12. पोखरिया, देवसिंह, कुमाउनी संस्कृति के विविध आयाम, पृ- 13- 15

8.10 उपयोगी / सहायक ग्रंथ सूची

- 1- न्यौली सतसई, डॉ. देवसिंह पोखरिया, अल्मोड़ा बुक डिपो
- 2- कुमाउनी कवि गौर्दा का काव्य दर्शन, सं. चारूचन्द्र पाण्डे
- 3- कुमाउनी भाषा, डॉ. केशव दत्त रूवाली
- 4- कुमाउनी हिन्दी शब्द कोश, डॉ. नारायण दत्त पालीवाल
- 5- कुमाऊँ का लोक साहित्य, डॉ. त्रिलोचन पाण्डे
- 6- कुमाउनी भाषा का अध्ययन, डॉ. भवानी दत्त उप्रेती

8.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. कुमाउनी लोकगीतों की विशेषताएँ बताते हुए इसके महत्त्व पर प्रकाश डालिए।
2. कुमाउनी लोकगीतों के विषयगत आधार पर विस्तृत वर्गीकरण प्रस्तुत कीजिए।
3. लोकगीत क्या हैं ? कुमाउनी लोकगीतों की विविध विधाओं का वर्णन कीजिए।

इकाई 9 कुमाउनी लोकगीत: इतिहास, स्वरूप एवं साहित्य

इकाई की रूपरेखा

- 9.1 प्रस्तावना
- 9.2 उद्देश्य
- 9.3 कुमाउनी लोकगीतों का इतिहास एवं स्वरूप
 - 9.3.1 कुमाउनी लोकगीत : स्वरूप विवेचन
 - 9.3.2 कुमाउनी लोकगीतों का वर्गीकरण
- 9.4 कुमाउनी लोकगीतों का भावपक्षीय वैशिष्ट्य
 - 9.4.1 कुमाउनी लोकगीतों की विशेष ताएँ
 - 9.4.2. कुमाउनी लोकगीतों का महत्त्व
- 9.5 कुमाउनी लोकगीतों का संक्षिप्त परिचय
- 9.6 सारांश
- 9.7 शब्दावली
- 9.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 9.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
- 9.10 सहायक ग्रंथ सूची
- 9.11 निबंधात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आप ने कुमाउनी लोकसाहित्य के इतिहास स्वरूप का अध्ययन किया है। प्रस्तुत इकाई कुमाउनी लोकसाहित्य की अनूठी विधा लोकगीत पर आधारित है। लोकसाहित्य का पूर्ण ज्ञान रखने वाले व्यक्ति के लिए लोकगीतों को समझना आसान होगा, क्योंकि लोकसाहित्य की एक विधा लोकगीत भी है। लोकगीत आरंभिक काल से लोक की गहन अनुभूति को प्रकट करते रहे हैं। लोकमानस की जमीन से जुड़ी यथार्थता स्वतः लोकगीतों में प्रस्फुटित हुई है। इस इकाई में हम लोकगीतों के दीर्घकालीन इतिहास पर दृष्टि डालेंगे तथा इसके स्वरूप का विवेचन करते हुए इसके महत्वपूर्ण पक्षों को समझ सकेंगे। कुमाउनी लोकगीतों के महत्त्व को समझकर उनकी सामाजिक प्रासंगिकता का ज्ञान प्राप्त कर पाएंगे। कुमाउनी लोकगीतों के वर्गीकरण से अलग अलग प्रकार के लोकगीतों का परिचय प्राप्त हो सकेगा। इकाई के उत्तरार्ध में कुमाउनी लोकगीतों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया गया है, जिसके माध्यम से हम विविध कुमाउनी लोकगीतों में निहित अनुभूति एवं अभिव्यक्ति विधान सहित स्वरूप को भलि भाँति जान सकेंगे।

9.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- कुमाउनी लोकगीतों का प्रादुर्भाव एवं इतिहास को समझ सकेंगे।
- आप बता पायेंगे कि कुमाउनी लोकगीत आरंभ से लोगों की जुबान पर किस प्रकार अवस्थित रहे हैं।
- कुमाउनी लोकगीतों के वर्गीकरण से आपको कुमाउनी साहित्य का समग्र बोध हो सकेगा।
- कुमाउनी रचनाकारों के अनुभूत ज्ञान का आपको ज्ञान प्राप्त हो सकेगा।
- आप जान सकेंगे कि किस तरह लोकगीत हमारे लोकजीवन की अपूर्व वस्तु है।
- कुमाउनी लोकगीतों की गेयता से आप एक गूढ़ अस्तित्व का भान कर सकेंगे।
- इन लोकगीतों के सामाजिक पक्ष से उद्धाटित होने वाली समरस सरल दृष्टि का अनुशीलन कर पाएँगे।

9.3 कुमाउनी लोकगीतों का इतिहास एवं स्वरूप

कुमाऊँ में लोकगीत प्रारंभ से प्रचलित रहे हैं। कुछ लोकगीत युगो से चली आ रही परंपरा को प्रदर्शित करते हैं तथा कालान्तर में परिनिष्ठित साहित्य के विकास के साथ ही लोकगीतों का अभिनव निर्माण किया जाने लगा। लिखित साहित्य के इतिहास में कुमाउनी लोकगीतों के रचयिता ज्ञात हैं। प्रारंभ से चले आ रहे लोकगीत लोकमानस का स्वच्छंद प्रवाह हैं प्रायः इनके निर्माता अज्ञात रहते हैं। आपने जिस इकाई का पूर्व में अध्ययन किया है उसमें

कुमाउनी साहित्य के उद्भव एवं विकास के अन्तर्गत ज्ञात रचनाकारों की रचनाओं का परिचय दिया गया है। यही लोकगीतों का इतिहास भी है। उन्हीं विकास के चरणों में लोकगीतों की ऐतिहासिक दृष्टि हमें प्राप्त होती है। कुमाऊँ में लोकगीतों का प्रचलन तो आरंभिक काल से रहा है। लिखित साहित्य के रूप में उपलब्ध लोकगीतों को हम ऐतिहासिक रूप से स्वीकार करेंगे, डॉ. त्रिलोचन पाण्डे ने कुमाउनी लिखित साहित्य को निम्नलिखित कालक्रमानुसार विभाजित किया है-

- (1) 19वीं सदी का साहित्य
- (2) 20वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध का साहित्य
- (3) 20वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध का साहित्य

हम उपर्युक्त काल विभाजन को लोकगीतों के क्रम में मान सकते हैं क्योंकि उपर्युक्त काल विभाजन में अस्सी फीसदी लोकगीतों वाली सामग्री हमें प्राप्त होती है। गुमानी कवि को सबसे प्राचीनतम कवि माना जाता है। इनका पुराना नाम लोकरत्न पंत था, इन्होंने लगभग 18 ग्रंथ लिखे जिनमें 'रामनाम पंच पंचाशिका', गंगाशतक, कृष्णाष्टक, नीतिशतक प्रमुख हैं, इनका काल सन् 1790 से 1846 ई. तक माना जाता है। बैर और भगनौल विधा के कुशल प्रणेता कृष्णा पाण्डे (सन् 1800-1850) का जन्म अल्मोड़ा के पाटिया नामक ग्राम में हुआ था, व्यवस्था की बदहाली का वर्णन उनकी कविताओं का मुख्य विषय था। इनकी प्रमुख काव्य रचना 'कृष्णा पाण्डे को कलियुग' है।

नयनसुख पाण्डे अल्मोड़ा के पिलखा नामक ग्राम में जन्मे थे। पहाड़ी स्त्री की मनोदशा पर इन्होंने कई कविताएं लिखीं। 19वीं शताब्दी के अवसान काल में गौरीदत्त पाण्डे का प्रादुर्भाव हुआ। इनका जन्म भी अल्मोड़ा के बल्दीगाड नामक स्थान में हुआ था। इनकी रचना गीदड़ सियार के गीत से प्रसिद्ध हैं। इसके अतिरिक्त इस काल के कवियों में ज्वालादत्त जोशी, लीलाधर जोशी, चिन्तामणि जोशी का नाम उल्लेखनीय है। बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के कवियों ने पद्य रचनाओं के निर्माण में अभूतपूर्व योगदान दिया। शिवदत्त सती इस युग के प्रतिनिधि कवि हैं। इनका जन्म 1870 ई. में फल्दाकोट रानीखेत में हुआ था। इनकी प्रमुख रचनाओं के नाम हैं- बुद्धिप्रवेश, मित्र विनोद, गोपीगीत, नेपाली भाषा के गीत, गोरखाली गीत, भाबर के गीत। गौरीदत्त पाण्डे गौर्दा (सन् 1872-1939) का जन्म अल्मोड़ा के पाटिया ग्राम में हुआ था। इनकी रचनाओं में गांधी दर्शन की स्पष्ट झलक मिलती है। इनकी रचना गौरी गुटका नाम से प्रसिद्ध है। शिरोमणि पाठक (सन् 1890-1955) का जन्म स्थान शीतलाखेत है। इनके द्वारा झौड़े, चांचरी तथा भगनौल लिखे गए। इसके अतिरिक्त इस काल के कवियों में श्यामाचरण दत्त पंत, रामदत्त पंत, चन्द्रलाल वर्मा चौधरी, जीवनचन्द्र जोशी, तारादत्त पाण्डे, जयन्ती देवी पंत, पार्वती उप्रेती, दुर्गादत्त पाण्डे, दीनानाथ पंत, तथा लक्ष्मी देवी के नाम प्रमुख हैं।

स्वतंत्रता के बाद अर्थात् 20वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में सामाजिक जीवन के यथार्थ से जुड़ी चीजें कुमाउनी लोकगीतों के माध्यम से प्रकट होने लगीं। भाषा भी अपने परिष्कार तथा परिमार्जन की तरफ अग्रसर हुई। स्वतंत्रता आंदोलन के बाद लिखी गई कुमाउनी कविताओं में

वैयक्तिक चेतना के अतिरिक्त सामाजिक सुधार के स्वर अधिक मुखरित हुए। इस काल के प्रमुख कवियों में चारूचन्द्र पाण्डे प्रथम कवि माने जाते हैं। इनका जन्म सन् 1923 ई. को हुआ। ब्रजेन्द्र लाल साह का नाम भी 20वीं शताब्दी के उत्तरार्ध के कवियों में आदर के साथ लिया जाता है। इनकी रचनाओं में लोकजीवन की मधुरतम छवि दिखाई देती है। कुमाउनी रामलीला को गेयपूर्ण ढंग से इन्होंने लिखा। इस काल को अद्यतन तक माना जाता है। शेर सिंह बिष्ट 'अनपढ़ इस समय के प्रख्यात रचनाधर्मी रहे। इनकी काव्य प्रतिभा लोगों के मन में नए उत्साहपूर्ण स्वर जाग्रत करती है। शेरदा अनपढ़ की प्रमुख रचनाएं, मोरि लटि पटि, जांठिक घुडुर, हसणै बहार हैं। बंधीधर पाठक जिज्ञासु का जन्म सन् 1934 को हुआ। ये एक कुशल आकाशवाणी के कलाकार थे। इनकी कुमाउनी रचना 'सिसौण' युगीन परिस्थितियों का जीता जागता उदाहरण है। इसके अतिरिक्त देवकी महारा, गोपाल दत्त भट्ट, किसन सिंह बिष्ट, कत्यूरी, रतन सिंह किरमोलिया, देव सिंह पोखरिया, शेर सिंह बिष्ट, दिवा भट्ट, बालम सिंह, जनोटी, त्रिभुवन गिरी, बहादुर बोरा, श्रीबंधु, दीपक कार्की एम0डी0अण्डोला, दामोदर जोशी, देवांशु, विपिन जोशी, श्याम सिंह कुटौला, देवकीनंदन काण्डपाल ने 20वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में परिनिष्ठित कुमाउनी लोकगीतों का प्रणयन किया।

9.3.1 कुमाउनी लोकगीत: स्वरूप विवेचन

लोकगीत शब्द का निर्माण लोक और गीत शब्दों से मिलकर हुआ है। लोकमानस की तरंगायित लयबद्ध अभिव्यक्ति को लोकगीत कहा जाता है। लोक जीवन में व्यक्ति अनेक उतार-चढ़ावों का सामना करता है। जीवन जीने की यही संघर्षपूर्ण अवस्था में व्यक्ति का विवके या मानस उसे कुछ रचने के लिए प्रेरित करता है। अनुभूतियों को व्यक्ति द्वारा शब्दों वाक्यों के रूप में पारिभाषित करने से लोकगीतों का निर्माण हुआ है। डॉ. देवसिंह पोखरिया ने लोकगीतों के संबंध में अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया है- 'लोकमानस की सुख दुखात्मक अनुभूति ही अनपढ़ गेय और मौखिक रूप में लोकगीत के रूप में फूट पड़ती है। साहित्यिक दृष्टि से काव्यात्मक गुणों की अभिजात्यता के अभाव में भी इनका अपना अलग ही नैसर्गिक सौन्दर्य होता है। ये लोकजीवन की धरती से स्वतः स्फूर्त जलधार की तरह होते हैं। इनमें लोकमानस का आदिम और जातीय संगीत सन्निहित रहता है। लोक जीवन के विविध क्रियाकलापों में रसज्ञ रंजन करने वाली अभिवृत्ति को लोकगीत माना जा सकता है।

डॉ. सदाशिव कृष्ण फड़के ने लोकगीत को पारिभाषित करते हुए लिखा है- लोकगीत विद्यादेवी के उद्यान के कृत्रिम फूल नहीं, वे मानो अकृत्रिम निसर्ग के श्वास प्रश्वास हैं। सहजानंद में से उत्पन्न होने वाली श्रुति मनोहरत्व से सहजानंद में विलीन हो जाने वाली आनंदमयी गुफाएं हैं। रामनरेश त्रिपाठी के विचारों को हम यहां समझ सकते हैं कि ग्रामगीत प्रकृति के उद्गार हैं। इसमें अलंकार नहीं केवल रस है। छंद नहीं केवल लय है। लालित्य नहीं केवल माधुर्य हैं। सभी मनुष्य के स्त्री पुरुषों के मध्य में हृदय नामक आसन पर बैठ कर प्रकृति गान करती है। प्रकृति के वे ही गान ग्राम्य गीत हैं।

कुमाउनी लोकगीतों के निर्माण के पीछे यहां की प्रकृति की सुकुमारता तथा निश्छल जनजीवन का बहुत बड़ा हाथ है। अपनी माटी, अपने लोग तथा अपनी संस्कृति के संवाही सुरों ने लोकगीतों की समष्टि रची है। हमारे कुमाउनी आदिकालीन आशु कवि अपने अन्तर्मन की विचाराधारा को बड़ी लयात्मक अभिव्यक्ति के साथ समाज के समक्ष रखते थे। वही निश्छल एवं गेय पूर्ण शैली लोकगीतों के सृजन में उपादेय सिद्ध हुई। यहाँ हम जान पाएंगे कि लोकगीतों में मानवीय संवेदनाओं का पुट रहता है तथा ये सरस जीवन शैली के आधारभूत उपागम भी होते हैं। लोकगीत शब्द का निर्माण लोक और गीत शब्दों से मिलकर हुआ है। लोकमानस की तरंगायित लयबद्ध अभिव्यक्ति को लोकगीत कहा जाता है। लोक जीवन में व्यक्ति अनेक उतार-चढ़ावों का सामना करता है। जीवन जीने की यही संघर्षपूर्ण अवस्था में व्यक्ति का विवेक या मानस उसे कुछ रचने के लिए प्रेरित करता है। अनुभूतियों को व्यक्ति द्वारा शब्दों वाक्यों के रूप में पारिभाषित करने से लोकगीतों का निर्माण हुआ है। डॉ. देवसिंह पोखरिया ने लोकगीतों के संबंध में अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया है- 'लोकमानस की सुख दुखात्मक अनुभूति ही अनपढ़ गेय और मौखिक रूप में लोकगीत के रूप में फूट पड़ती है। साहित्यिक दृष्टि से काव्यात्मक गुणों की अभिजात्यता के अभाव में भी इनका अपना अलग ही नैसर्गिक सौन्दर्य होता है। ये लोकजीवन की धरती से स्वतः स्फूर्त जलधार की तरह होते हैं। इनमें लोकमानस का आदिम और जातीय संगीत सन्निहित रहता है।

लोक जीवन के विविध क्रियाकलापों में रसज्ञ रंजन करने वाली अभिवृत्ति को लोकगीत माना जा सकता है। डॉ. सदाशिव कृष्ण फड़के ने लोकगीत को पारिभाषित करते हुए लिखा है- लोकगीत विद्यादेवी के उद्यान के कृत्रिम फूल नहीं, वे मानो अकृत्रिम निसर्ग के श्वास प्रश्वास है। सहजानंद में से उत्पन्न होने वाली श्रुति मनोहरत्व से सहजानंद में विलीन हो जाने वाली आनंदमयी गुफाएं हैं।

रामनरेश त्रिपाठी के विचारों को हम यहां समझ सकते हैं कि ग्रामगीत प्रकृति के उद्गार हैं। इसमें अलंकार नहीं केवल रस है। छंद नहीं केवल लय है। लालित्य नहीं केवल माधुर्य हैं। सभी मनुष्य के स्त्री पुरुषों के मध्य में हृदय नामक आसन पर बैठ कर प्रकृति गान करती है। प्रकृति के वे ही गान ग्राम्य गीत है।

कुमाउनी लोकगीतों के निर्माण के पीछे यहां की प्रकृति की सुकुमारता तथा निश्छल जनजीवन का बहुत बड़ा हाथ है। अपनी माटी, अपने लोग तथा अपनी संस्कृति के संवाही सुरों ने लोकगीतों की समष्टि रची है। हमारे कुमाउनी आदिकालीन आशु कवि अपने अन्तर्मन की विचाराधारा को बड़ी लयात्मक अभिव्यक्ति के साथ समाज के समक्ष रखते थे। वही निश्छल एवं गेय पूर्ण शैली लोकगीतों के सृजन में उपादेय सिद्ध हुई। यहाँ हम जान पाएंगे कि लोकगीतों में मानवीय संवेदनाओं का पुट रहता है तथा ये सरस जीवन शैली के आधारभूत उपागम भी होते हैं।

9.3.2 कुमाउनी लोकगीतों का वर्गीकरण

कुमाउनी लोकगीतों के सम्यक अध्ययन के लिए हम उनका वर्गीकरण करेंगे। पूर्व में लोक साहित्यकारों द्वारा किए गए वर्गीकरण को आधार मानकर उनका विषयवस्तुगत भाषायी,

प्रकृति, तथा जातिगत आदि आधारों पर वर्गीकरण किया जाना समीचीन प्रतीत होता है। डा. पोखरिया ने कुमाउनी लोकगीतों का वर्गीकरण करते हुए लिखा है- 'वर्ण्य विषय, भाषा क्षेत्र और काव्य रूप आदि की दृष्टि से लोकगीतों के निम्न आधार हो सकते हैं-

- (1) विषयगत आधार (2) क्षेत्रीय आधार (3) भाषागत आधार (4) काव्य रूप गत आधार
- (5) जातिगत आधार (6) अवस्था भेद (7) लिंगगत आधार (8) उपयोगिता का आधार (9) प्रकृति भेद

कुमाउनी के आधिकारिक विद्वानों, विशेष ज्ञों तथा शोधकर्ताओं ने सामान्यतया विषयवस्तु सम्मत आधार को ही अपनाया है। वैशयिक तथा वर्ण्य विषय को स्वीकारते हुए हम अन्य विद्वानों के वर्गीकरण को इस प्रकार समझ पाएंगे-

डॉ. त्रिलोचन पाण्डे का वर्गीकरण

मुक्तक गीत

- V. नृत्य प्रधान -झोड़ा चांचरी छपेली
- VI. अनुभूति प्रधान- भगनौल तथा न्यौली
- VII. तर्क सम्मत- बैर
- VIII. संवाद प्रधान तथा स्फुट

(2) संस्कार प्रधान

III. अनिवार्य

IV. विशेष

(3) ऋतुगीत

(4) कृषिगीत

(5) देवीदेवता व्रत त्योहार के गीत

(6) बाल गीत

डा. कृष्णानंद जोशी ने कुमाउनी लोकगीतों का वर्गीकरण इस प्रकार किया है-

(1) धार्मिक गीत

(2) संस्कार गीत

(3) ऋतु गीत

(4) कृषि संबंधी गीत

(5) मेलों के गीत

(6) परिसंवादात्मक गीत

(7) बाल गीत

लोकसाहित्य तथा कुमाउनी भाषा साहित्य के विद्वान भवानीदत्त उप्रेती ने विषयस्तुगत आधार को वर्गीकरण के लिए उपयुक्त माना है-

(1) संस्कार गीत

(2) स्तुति पूजा और उत्सव गीत

- (3) ऋतु गीत
- (4) जाति विषयक गीत
- (5) व्यवसाय संबंधी गीत
- (6) बाल गीत
- (7) मुक्तक गीत

विभिन्न विद्वानों द्वारा किए वर्गीकरण से स्पष्ट होता है कि लगभग सभी विद्वानों ने विषय को ही वर्गीकरण का आधार माना है। यहां हम वर्गीकरण के लिए विषयवस्तुगत आधार का चयन करेंगे तथा विभिन्न लोकगीतों की मौलिक प्रवृत्तियों से अवगत हो सकेंगे।

धार्मिक पुराण कालीन संदर्भित लोकगीत- पुराण काल की कथाओं एवं आख्यानों को आरंभिक दौर से लोकगीतों के माध्यम से अभिव्यक्त किया जाता रहा है। कृष्णानंद जोशी ने धार्मिक गीतों के विषय में लिखा है- इन गीतों में सर्वप्रथम वे गीत आते हैं, जिनकी विषयवस्तु पौराणिक आख्यान से संबंधित है। इसी प्रकार के एक गीत में वर्णित है वह क्षण जब सृष्टिकार ने महाशून्य में हंस का एक जोड़ा प्रकट किया और हंसिनी का अंडा गिरकर फूटने से एक खंड से आकाश बना और दूसरे से धरती। इसी प्रकार महाभारत काल के कौरव पाण्डवों की कथा के अंश लोकगीतों के माध्यम से प्रकट किए जाते रहै हैं। रामचरित मानस में उल्लिखित श्रीरामचन्द्र जी कथा का वर्णन भी इन गीतों के माध्यम से देखे जा सकते हैं।

उदाहरणार्थ

बाटो लागी गया मुनि तपसिन

जै पिरथी राजा को रैछ एक पूत

तिनरा देश वैछ बार बिसी हलिया, बार बीसी बौसीया

रोपन का खेत भगवान कूल टुटी भसम पड़ी गेछ,

लोकमानस की महाभारत कालीन प्रस्तुति इन पंक्तियों में देखी जा सकती है-

पांडवन की लछण बिराली, कौरवन की पहाड़ी कुकुड़ी,

तेरी बिराली कुकुड़ी ब्यूज बैरछ बिराली कुकुड़ी मारी दीयो ।

इन गीतों में पौराणिक कथा सार की अभिव्यक्ति को हम सरलता से समझ सकते हैं।

संस्कार गीत- मनुष्य के जीवन में संस्कारों का बड़ा महत्व है। बच्चे के जन्म से लेकर मृत्यु तक विविध संस्कार सम्पन्न किए जाते हैं। कुमाउनी संस्कार गीतों में जन्म छठी, नामकरण उपनयन विवाह आदि के गीत सम्मिलित हैं, ये गीत प्रायः महिलाओं द्वारा गाए जाते हैं। संस्कारों में होने वाली पूजा अनुष्ठान के अनुसार इन गीतों को गाया जाता है। यहां हम कुछ कुमाउनी संस्कार गीतों को संक्षेप में जानने का प्रयास करेंगे। कुमाऊँ में प्रत्येक सुअवसर पर शकुनांखर सगुण (सगुन) के गीत गाने की परंपरा है।

ध्यायनु भयै, ध्यायनु भैये, थाति को थत्याल

ध्यायनु भयै, ध्यायनु भैय, भुई को भूम्याल

बच्चे के जन्म के अवसर पर यह गीत गाया जाता है।

धन की धौताला, धन की धौ,
 धन की धौताला धन की धौ,
 यरबा सिर सिड़ जोड़ सिरसिड़
 पाडव्वा बाबै जोड़ जोड. बावै
 विवाह के समय फाग के गीतों की विशेष परंपरा देखी जा सकती है।
 पैलिक सगुन पिडली पिठाक
 उति है सगुन दई दई माछा
 पिड.ली पिठाक कुटल है

खनल पनीया ध्वेज उखल कुटल

ऋतु गीत- विभिन्न ऋतुओं के आगमन पर कुमाऊं में लोकगीत प्रचलित हैं, बसंत ऋतु के आगमन पर लोगों का तनमन सुवासित हो जाता है। उसी प्रकार वर्षा ऋतु के आगमन पर भी मन में उठने वाली तरंगे नया आभास जगाती है। ऋतु गीतों में विरह वेदना प्रकृति के नाना रूपों का वर्णन समविष्ट रहता है। आप ऋतुराज बसंत के यौवन को इस गीत में देख सकते हैं।

रितु ऐ गे हैरी फेरी ओ गरमा रितु,
 मारीया मानीख पलटी नी ऊंनो।

इन गीतों में अपने प्रियजनों की स्मृति, निराशा तथा भावुकता देखी जा सकती है।

कृषि विषयक गीत- कुमाऊं में कृषि विषयक गीतों को हुड़की बौल के नाम से जाना जाता है। प्राचीन विचाराधारा के अनुसार कृषि कार्यों में तत्परता तथा एकाग्रता के लिए मनोरंजक गीत सुनाए जाने का प्रचलन है। हुड़की बौल में एक व्यक्ति हुड़के की थाप पर गाता हुआ आगे बढ़ता रहता है तथा कृषि कार्य निराई गुड़ाई या रोपाई करने वाले लोग कार्य करते हुए बड़ी लगन से बौल लगाने वाले के स्वर को दुहराते हैं, इसमें कार्य भी जल्दी सम्पन्न हो जाता है तथा मनोरंजन के द्वारा लोगों को थकान का अनुभव नहीं होता है। हुड़कि बैल में ऐतिहासिक लघु गाथाएं गायी जाती हैं।

लोकोत्सव एवं पर्व संबंधी गीत:- लोक के विविध उत्सवों, पर्वों पर जो गीत गाए जाते हैं, उनमें लोक मनोविज्ञान तथा लोकविश्वास के लक्षण पाए जाते हैं। स्थानीय पर्वों फूलदेई तथा घुघुतिया को प्रथागत आदर्शों के साथ मनाया जाता है। फूल संक्रान्ति के अवसर पर बच्चे गांव के प्रत्येक घर के दरवाजे पर सरसों तथा फूलदेई के फूल अर्पित करते हुए कहते हैं-

फूल देई छममा देई

भरभकार दैणी द्वारा

जतुकै दिछा उतुकै सई

फूल देई छम्मा देई

घुघुतिया (मकर संक्रान्ति) को बच्चे आटे के बने घुघुतों की माला गले में डालकर प्रातः कौवे को बुलाते हैं-

‘काले कौवा काले काले काले

घुघुती मावा खाले खाले खाले

तु ल्हि जा बड़ म्यकै दिजा सुनु घड़

काले कौवा काले काले काले

कुमाऊँ में हरेला पर्व हरियाली का प्रतीत है। हरेले के त्यौहार में हरेला आशीश के रूप में सिर पर रखा जाता है। इस अवसर पर आशीर्वचन देते हुए कहते हैं-

हर्याली रे हर्याली हरिया बण जाली

दुबड़ी कैँछ दुबै चड़ि जूलो

चेली कैँछ मैं मैतुलि जूलो, आओ चेलि खिलकन मैत

तुमारे बाबू घर, तुमारे भइयन घर हरयाली को त्यार

विभिन्न प्रकार के पर्वोत्सवों पर गाए जाने वाले इन गीतों में उद्बोधन तथा आशीर्वाद के भावों को देखा जा सकता है।

मेलों के गीत:- मेला शब्द की उत्पत्ति मेल से हुई है। कुमाऊँ में विभिन्न प्रकार के मेले आयोजित होते आए हैं। इन मेलों में लोग पारस्परिक मेल मिलाप करते हैं। प्राचीन काल से ज्ञानी लोग मेले में अपनी कवित्व शक्ति का प्रदर्शन करते आए हैं। इनमें सामूहिक नृत्यगीत भी शामिल हैं। यहां पर हम देखेंगे कि मेलों के माध्यम से सामूहिक गायन पद्धति से लोग मनोरंजन करते हैं। इन गीतों में झोड़ा, चांचरी, छपेली, भगनौल और बैर का प्रचलन है। हुड़के की थाप पर लोग एक दूसरे से श्रृंखलाबद्ध होकर थिरकते दिखाई देते हैं। इन लोकगीतों में स्थानीय देवी देवताओं की स्तुति के साथ-साथ प्राचीन वैदिक कालीन संदर्भ कथाओं का गायन भी किया जाता है। झोड़ा और चाँचरी में गोल घेरे में कदम से कदम मिलाकर नृत्य किया जाता है। इसमें लयबद्ध तरीके से गायन पद्धति अपनाई जाती है।

चौकोटे कि पारवती स्कूल नि जानि बली इस्कूला नि जानी ,

मासी का परताप लौंडा स्कूल नि जानि बली इस्कूलनि जाना।

छपेली नृत्य में द्रुत गायन शैली अपनाई जाती है। ओहो करके गीत शुरू किया जाता है। भगनौल में पद्यात्मक उक्तियों को आरोह अवरोह के साथ प्रस्तुत किया जाता है। इन उक्तियों को गेयपदों में जोड़ने वाली गीत शैली जोड़ के रूप में जानी जाती है। बैर में युद्धों का वर्णन किया जाता है। इसमें तार्किक कथनों के द्वारा एक दूसरे को निरुत्तर करने की प्रतियोगिता होती है।

परिसंवादात्मक गीत- संवाद शैली से युक्त गायन पद्धति को परिसंवादात्मक गीतों की श्रेणी में रखा जाता है। इन गीतों में संवादों के माध्यम से विभिन्न पात्रों के कौशल को जाना जा सकता है। डॉ कृष्णानंद जोशी के अनुसार- 'हरियाला का त्यौहार आने पर एक माँ अपनी बिटिया को मायके बुलाने का अनुरोध करती है- कन्या के पिता के जाते समय के अपशकुन माँ के हृदय को दुखित कर देते हैं। बेटी के ससुराल जाकर पिता को बताया जाता है कि 'रघी' घास लकड़ी लाने जंगल गई हुई है, पानी भरने गई हुई है आदि। रघी के पिता बेटी की प्रतीक्षा में बैठे रहते हैं। उस रघी को, जो अब कभी नहीं लौटेगी, गीत के दूसरे भाग में वह दृश्य 'फ्लैश बैक' के रूप में प्रस्तुत किया गया है। जिसमें रघी की ननद अपनी माँ से अनुरोध करती है कि पोटली में रखे

च्यूले उसने खाए हैं। रघी ने नहीं, रघी को मत पीटो। ओ क्रूर माँ! तुमने रघी को मारकर उसका शव तक गोठ में छिपा दिया।

खाजा कुटुरी मैले लुकैछ ईजू पापिणी बोजि नै मार,
पाना मारीछ गोठ लुकैछ, ईजू पापिणी बोजि नै मार।
साग काटछ राम करेली, ईजू पापिणी बोजि नै मार।

इन गीतों में लोक जीवन की मर्यादक पीड़ा का भाव देखा जा सकता है। हमें पता चलता है कि तत्कालीन परिस्थितियों में मानवीय व्यवहार के तौर तरीकों में कितनी असभ्यता थी। कुछ ऐतिहासिक लोक कथाओं के आख्यान भी हम इन संवाद प्रधान गीतों के माध्यम से जान सकेंगे। **बाल गीत** - व्यक्ति के जीवन की शुरूआत बचपन से होती है। बालपन में शिशु का मन निश्छल होता है। वह खेलना पसंद करता है। जीवन के गंभीर उतार चढ़ावों से अनभिज्ञ शिशु अपनी किलकारियों में ही खेल का अनुभव करता है। बच्चों द्वारा आपस में खेले जाने वाले खेलों में ही गीत विकसित होते हैं। इन गीतों का निर्माण स्वतः स्फूर्त माना जाता है। यथा -

डक्की डक्की मुक्का पड़ौ
ओ पाने ज्यू भ्यो पड़ो
सात समुन्दर गोपी चन्दर
बोल मेरी मछली कितना पानी
(दूसरी कहती है) इतना पानी

बच्चे गीतों के साथ साथ अपने भावों को हाथ हिलाकर भी प्रकट करते हैं। कहना उचित होगा कि बालगीत बच्चों के सुकोमल मनोविज्ञान की स्वच्छंद सरल अभिव्यक्ति है। जिनमें किसी गंभीर विषय बोध की सदा अनुपस्थिति रहती है।

बोध प्रश्न

क - सही विकल्प को चुनिए -

1. 'फूल देई छम्मा देई' लोकगीत की किस कोटि में आता है?
 - V. बालगीत
 - VI. नृत्यगीत
 - VII. पर्व संबंधी गीत
 - VIII. भगनौल
2. 'गौरी गुटका' नामक रचना है -
 - V. गुमानी पंत
 - VI. रामदत्त पंत
 - VII. गौरीदत्त पाण्डे
 - VIII. शेरसिंह विष्ट
3. ऋतुओं का वर्णन किस गीत में मिलता है ?
 - V. संस्कार गीत

- VI. ऋतु गीत
VII. कृषि संबंधी गीत
VIII. पर्व उत्सव संबंधी गीत

ख - 20 वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के लोकगीतों का इतिहास संक्षेप में लिखिए।

ग - लोकगीत क्या हैं ? विषयगत आधार पर लोकगीतों का वर्गीकरण कीजिए।

घ - 'झोड़ा' और 'भगनौल' पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

9.4 कुमाउनी लोकगीतों का भावपक्षीय वैशिष्ट्य

हम सब जानते हैं कि लोकगीत लोकमानस की वह तरंगायित अभिव्यक्ति है, जो नियति और मानवीय सत्ता के विविध रूपों को समाहित किए रहती है। मानव ने भौतिक विकास के सापेक्ष मानसिक विकास के द्वारा समाज में अपने अस्तित्व को मुखर किया है। लोकगीत लोकमानस के संवेदना के मौलिक तत्व हैं। अनुभूति तथा ज्ञान की लयबद्ध अभिव्यक्ति प्रायः लोकगीतों के माध्यम से प्रकट होती है।

भावपक्ष की दृष्टि से हम देखते हैं कि गीतों का निर्माण ही भाव भूमि पर हुआ है। ये वही भाव हैं, जो प्रकृति के नाना रूपों में, व्यथा, वेदना, हर्ष, विषाद आदि के रूपों में शब्दों में स्वतः उतर आते हैं। इनकी यही लयात्मक प्रवृत्ति इनको रोचक बनाए हुए है। लोकगीतों में व्यष्टि और समष्टि का अपूर्व मिश्रण होता है, जो समाज के चेतनामूलक फलक को प्रभावित कर उसे सरस बना देता है। अतः हम कह सकते हैं कि व्यक्ति की सुख दुखात्मक स्थितियों में अन्तर्मन से जो वाणी फूट पड़ती है तथा लोक के लिए एक रुचिकर शैली बन जाती है, वही लोकगीत कहलाता है।

9.4.1 कुमाउनी लोकगीतों की विशेष ताएँ

कुमाउनी लोकगीत कुमाऊँ के जनमानस की व्यापक संवेदनशीलता को प्रकट करते हैं। वाचिक तौर पर वर्षों से जीवित इन गीतों में अपनी माटी की सुगंध निहित है। ये गीत मानव को मानव से जोड़ने में यकीन रखते हैं। कहीं कहीं आप पाएँगे कि इन गीतों में पौराणिक चरित्रों का चित्रण भी हुआ है। वैदिक कालीन समाज व्यवस्था तथा प्रमुख पात्र एवं घटनाओं से संबंधित आख्यान इन लोकगीतों के आधार बनें हैं। सत्य की अनुभूति लोकगीतों के माध्यम से स्पष्ट झलकती है।

इन गीतों में पहाड़ के पशुपक्षियों तथा प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन देखने को मिलता है। 'न्यौली' नामक लोकगीत एक विरही पक्षी पर आधारित है। न्यौली एक पहाड़ी प्रजाति की कोयल को कहा जाता है। इसे विरह का प्रतीक माना जाता है। ऐसी धारणा है कि न्यौली अपने पति के वियोग में दिन रात मर्मन्तक स्वरों से जंगल को गुंजायमान बनाती फिरती है। लोकमानस ने उस पक्षी को अपने संवेदना के धरातल पर उकेरा है। सामान्य अर्थों में न्यौली का अर्थ 'नवेली' 'नई' से लिया जाता है।

कुमाउनी लोकगीत विभिन्न धार्मिक संस्कारों के संवाहक हैं। गर्भाधान, नामकरण, अन्नप्राशन, जनेऊ, विवाह आदि संस्कारों में गाए जाने वाले लोकगीत युगों

से चली आ रही वाचिक परंपरा के सत्यानुभूत कथन हैं। लोकगीतों की विशेषता उनके लयात्मक गायन शैली में निहित है। प्रेम, करुणा, विरह आदि की अवस्थाओं पर कई लोकगीत समाज में प्रचलित हैं।

डॉ. त्रिलाचन पाण्डे ने कुमाउनी लोकगीतों की विशेषता को बताते हुए कहा है - 'कुमाऊँ में जमींदार प्रथा तो नहीं है, फिर भी कुछ लोगों के पास बहुत जमीन हो गई है। दूसरे लोग बटाई पर काम करते हैं। जमीन भी 'तलाऊँ', मलाऊँ, आबाद, बंजर कई प्रकार की है। नदियों की घाटियों वाली भूमि अधिक उत्पादक होती है, जिसे 'स्यारा' कहते हैं। दलदली भूमि 'सिमार' कहलाती है। इसकी उत्पादक क्षमता को ध्यान में रखकर जो लगान वर्षों पूर्व अंग्रेजों द्वारा निर्धारित किया गया या उसमें समय पर परिवर्तन होते गए। अब कुछ वर्ष पूर्व भूमि नाप संबंधी नई योजना प्रारंभ हुई तो कुछ लोग अपनी जमीन बढ़ा चढ़ाकर लिखाने लगे। कुछ पीछे रह गए। गीतकारों ने इस स्थिति की सटीक व्याख्या की है।'

इस प्रकार आप देखेंगे कि कुमाउनी लोक गीत स्वयं में अनेक विशेषताओं को समेटे हैं। लौकिक ज्ञान की धरातल से जुड़ी प्रस्तुतियाँ इन गीतों के माध्यम से होती हैं। इन गीतों में कल्पना भी चरम सीमा पर होती है। इन गीतों में अपने समय की सजीवता है। मानव व्यवहार के तौर तरीकों तथा समाज मनोविज्ञान के कई तथ्य इन गीतों द्वारा अभिव्यक्त होते आए हैं। प्रकृति के नाना रूपों का वर्णन इन गीतों का प्रमुख प्रतिपाद्य होता है। लोक सत्य के उद्घाटन में ये गीत अग्रणी हैं। प्राचीन काल की रोचक एवं ज्ञानवर्धक ज्ञान की समाविष्टि इन गीतों का स्वभाव है।

अतः कहा जा सकता है कि कुमाउनी लोकगीतों की विशेषता यहाँ के जनमानस की सांगीतिक प्रस्तुति है। ये विषय वैविध्य का लक्षण प्रदर्शित करते हैं। वर्गीकरण के आधार पर अलग अलग विषयों के लोकगीतों में तत्कालीन परिस्थितियों का वर्णन हुआ है, जिनके द्वारा समाज को मानसिक जगत में बहुत लाभ प्राप्त हुआ है।

9.4.2 कुमाउनी लोकगीतों का महत्त्व

कुमाउनी लोकगीतों द्वारा मनुष्य के भावों को प्रकट करने की तरल क्षमता प्रकट होती है। ये लोकगीत समाज का उचित मनोरंजन करते हैं। साथ ही इनमें अपने समय को व्यक्त करने की पर्याप्त क्षमता होती है। प्रोफेसर देवसिंह पोखरिया ने 'कुमाउनी संस्कृति के विविध आयाम' पुस्तक में संतराम अनिल के विचारों को प्रकट करते हुए लिखा है - 'लोकगीत साहित्य की अमूल्य और अनुपम निधि हैं। इनमें हमारे समाज की एक एक रेखा, सामयिक बोध की एक एक अवस्था, सामूहिक विजय पराजय, प्रकृति की गति, विधि, वृक्ष, पशु, पक्षी और मानव के पारस्परिक संबंध बलि, पूजा, टोने टुटके, आशा, निराशा, मनन और चिन्तन सबका बड़ा ही मनोहारी वर्णन मिलता है।'

लोकगीतों के महत्त्व को निम्नलिखित बिन्दुओं द्वारा समझा जा सकता है -

- (1) लोकगीतों में युगीन परिस्थितियों का वर्णन मिलता है।
- (2) ये गीत मानवी संवेदना के हर्ष - विषाद, सुख दुःख तथा काल्पनिकता को अभिवृद्ध करते हैं।

- (3) लोकगीतों में सामाजिक परिवेश को सरस बनाने की कला होती है।
- (4) लोकगीतों में गीति तत्व तथा लय होने से ये वाचिक परंपरा के मनोहारी आख्यान कहै जाते हैं।
- (5) लोकगीत मानव समाज को आदिम परंपरा से सभ्य समाज की तरफ अग्रसर करते हैं।
- (6) लोकगीतों में मौलिकता होती है, जो व्यक्ति के जीवन के यथार्थ स्वरूप को सामने लाती है।
- (7) कुमाऊँ में प्रचलित लोकगीतों में प्रत्येक युगानुसार उनकी विकासवादी धारणा को समझा जा सकता है।
- (8) ये कार्य संपादन के तरीकों में प्रयुक्त होकर कार्य का निष्पादन त्वरित गति से करते हैं।

स्पष्टतः लोकगीतों में समाज के विभिन्न जातियों, धर्मों, अनुष्ठानों तथा उनके तौर तरीकों पर प्रकाश पड़ता है। हम लोकगीतों के माध्यम से समाज की तत्कालीन स्थिति को सरलता से जान सकते हैं।

बोधात्मक प्रश्न

क - नीचे दिए गए प्रश्नों में सही विकल्प चुनकर लिखिए -

1. लोकगीत की वह पद्धति जिसमें स्त्री पुरुष एक दूसरे के कंधे में हाथ डालकर गोलाकार भाग में कदम मिलाकर चलते हैं कहलाती है -

- V. बैर
- VI. जागर
- VII. झोड़ा
- VIII. जोड़

2. संवादक मूलक लोकगीत है -

- V. झोड़ा
- VI. छपेली
- VII. चाँचरी
- VIII. बैर

3. संस्कारों के अवसर पर गाए जाने वाले गीत हैं -

- V. छपेली
- VI. भगनौल
- VII. फाग
- VIII. होली के गीत

(4) लोकगीतों के महत्त्व पर प्रकाश डालिए

(5) कुमाउनी लोकगीतों के वर्गीकरण का सबसे सरल और व्यावहारिक आधार कौन सा है ? लोकगीतों का वर्गीकरण प्रस्तुत कीजिए।

9.5 कुमाउनी लोकगीतों का संक्षिप्त परिचय

कुमाउनी लोकगीत प्राचीन काल से वर्तमान काल तक लोकजीवन में निर्बाध रूप से प्रचलित रहे हैं। आरंभिक काल से चली आ रही लोकगीतों की परंपरा में यहाँ के जनमानस की प्रकृतिपरक, मानवीय संवेदना, विरह एवं मनोरंजन का पुट स्पष्ट झलकता है। पर्वतीय जीवन शैली को आप इन सुरधाराओं में आसानी से पा सकते हैं। पशु पक्षियों का आलंबन लेकर उसे मानवीय सत्ता से जोड़कर लोकगीतों को मर्मस्पर्शी बनाया गया है। कुमाऊँ क्षेत्र में प्रचलित लोकगीतों में समय के साथ आए बदलाव को भी परखा जा सकता है। लोकवाणी की तर्ज पर जिन प्राचीन गीतों में प्रकृति सम्मत आख्यान मिलते हैं, वहीं आधुनिक लोकगीतों में नए जमाने की वस्तुओं, फैशन का उल्लेख मिलता है। नए लोकगीत व्यावसायिक दृष्टिकोण से बनाए तथा गाए जाते हैं। इन गीतों का ध्वनिमुद्रण उच्च इलेक्ट्रॉनिक तकनीक पर आधारित होता है। इसका एक प्रमुख कारण यह भी है कि कुमाऊँवासी पहाड़ को छोड़कर मैदानी इलाकों को पलायन कर रहे हैं। मैदानी शहरी जिन्दगी में उन्हें ये लोकगीत पहाड़ी भाषा की मनोरंजक स्मृति मात्र का सुख देते हैं। फिर भी कुछ लोग मौलिक प्राचीन वाचिक परंपरा को अपनाने में ही विश्वास रखते हैं। कुमाउनी लोकसाहित्य के मर्मज्ञ डॉ. देवसिंह पोखरिया तथा डॉ. डी. डी. तिवारी ने अपनी संपादित पुस्तक 'कुमाउनी लोकसाहित्य' में न्यौली, जोड़, चाँचरी, झोड़ा, छपेली, बैर तथा फाग का विशद वर्णन किया है। यहाँ हम इन लोकगीतों को संक्षेप में समझने का प्रयास करेंगे।

न्यौली - न्यौली एक कोयल प्रजाति की मादा पक्षी है। ऐसा माना जाता है कि यह न्यौली अपने पति के विरह में निविड़ जंगल में भटकती रहती है। शाब्दिक अर्थ के रूप में न्यौली का अर्थ नवेली या नये से लगाया जाता है। कुमाऊँ में नई बहू को नवेली कहा जाता है। सुदूर घने बाँज, बुरांश के जंगलों में न्यौली की सुरलहरी को सहृदयों ने मानवीय संवेदनाओं के धरातल पर उतारने का प्रयास गीतों के माध्यम से किया है। न्यौली की गायनपद्धति में प्रकृति, ऋतुएँ, नायिका के नख शिख भेद निहित हैं। छंदशास्त्र के दृष्टिकोण से न्यौली को चौदह वर्णों का मुक्तक छंद रचना माना जाता है।

न्यौली का उदाहरण -

चमचम चमक छी त्यार नाकै की फूली
धार में धेकालि भै छै, जनि दिशा खुली
(तेरे नाक की फूली चमचम चमकती है, तुम शिखर पर प्रकट क्या हुई ऐसा लगा कि जैसे दिशाएँ खुल गई हों)

जोड़ - जोड़ का अर्थ जोड़ने से है। गणित में दो और दो चार होता है। कुमाउनी लोकसाहित्य में जोड़ का अर्थ पदों को लयात्मक ढंग से व्यवस्थित करना है। संगीत या गायन शैली को देखते हुए उसे अर्थलय में ढाला जाता है। जोड़ और न्यौली लगभग एक जैसी विशेषता को प्रकट

करते हैं। द्रुत गति से गाए जाने वाले गीतों में हल्का विराम लेकर 'जोड़' गाया जाता है। जोड़ को लोकगायन की अनूठी विधा कहा जाता है।

उदाहरण -

दातुलै कि धार दातुलै की धार
बीच गंगा छोड़ि ग्यैये नै वार नै पार

(अर्थात् दराती की धार की तरह बीच गंगा में छोड़ गया, जहाँ न आर है न पार)

चाँचरी - चाँचरी शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के 'चर्चरी' से मानी गई है। इसे नृत्य और ताल के संयोग से निर्मित गीत कहा जाता है। कुमाऊँ के कुछ भागों में इसे झोड़ा नाम से भी जाना जाता है। 'चाँचरी' प्रायः पर्व, उत्सवों और स्थानीय मेलों के अवसर पर गाई जाती है। यह लोकगीत गोल घेरा बनाकर गाया जाता है, जिसमें स्त्री पुरुष पौरो एवं संपूर्ण शरीर को एक विशेष लय क्रमानुसार हिलाते डुलाते नृत्य करते हैं। चाँचरी प्राचीन लोकविधा है। मौखिक परंपरा से समृद्ध हुई इस शैली को वर्तमान में भी उसी रूप में गाया जाता है। चाँचरी में विषय की गहनता का बोध न होकर स्वस्थ मनोरंजन का भाव होता है, जो लोगों को शारीरिक और मानसिक रूप से लाभ पहुँचाता है।

उदाहरण - काठ को कलिजों तेरो छम

(वाह! का कलेजा तेरा क्या कहने)

चाँचरी में अंत और आदि में 'छम' का अर्थ बलपूर्वक कहने की परंपरा है। छम का अर्थ घुघरूँ के बजने की आवाज को कहा जाता है। छम' कहने के साथ ही चाँचरी गायक पैर व कमर को झुकाकर एक हल्का बलपूर्वक विराम लेता है।

झोड़ा - जोड़ अर्थात् जोड़ा का ही दूसरा व्यवहृत रूप है झोड़ा। कुमाउनी में 'झ' वर्ण की सरलता के कारण 'ज' वर्ण को 'झ' में उच्चरित करने की परंपरा है। झोड़ा या जोड़ गायक दलों द्वारा गाया जाता है। एक दूसरे का हाथ पकड़कर झूमते हुए यह गीत गाया जाता है। इसे सामूहिक नृत्य की संज्ञा दी गई है। किसी गाथा में स्थानीय देवी देवताओं की स्तुति या किसी गाथा में निहित पराक्रमी चरित्रों के चित्रण की वृत्ति निहित होती है।

उदाहरण -

ओ घटै बुजी बाना घटै बुजी बाना
पटि में पटवारि हुँछौ गों में पधाना
आब जै के हुँ छै खणयूणी बुड़ियै की ज्वाना

(नहर बांध कर घराट (पनचक्की) चलाई गई पट्टी में पटवारी होता है गांव में होता है प्रधान अब तू बूढ़ी हो गई है कैसे होगी जवान)

छपेली - छपेली का अर्थ होता है क्षिप्र गति या त्वरित अथवा द्रुत वाकशैली से उद्भूत गीत । यह एक नृत्य गीत के रूप में प्रचलित है। लोक के तर्कपूर्ण मनोविज्ञान की झलक इन गीतों में आप आसानी से पा सकते हैं। लोकोत्सवों, विवाह या अन्य मेलो आदि के अवसर पर लोक सांस्कृतिक प्रस्तुति के रूप में इन नृत्य गीतों को देखा जा सकता है। छपेली में एक मूल गायक

होता है। शेष समूह के लोग उस गायक के गायन का अनुकरण करते हैं। स्त्री पुरुष दोनों मिलकर छपेली गाते हैं। मूल गायक प्रायः पुरुष होता है, जो हुड़का नामक लोकवाद्य के माध्यम से अभिनय करता हुआ गीत प्रस्तुत करता है।

छपेली में संयोग विप्रलम्भ श्रृंगार की प्रधानता होती है। प्रेम की सच्ची भावना को सुमधुर ढंग से गायकी में अभिव्यक्त किया जाता है।

उदाहरण - भाबरै कि लाई
भाबरै की लाई
कैले मेरि साई देखि
लाल साड़ी वाई

(भाबर की लाही भाबर की लाही किसी ने मेरी लाल साड़ी वाली साली देखी)

बैर - बैर शब्द का प्रयोग प्रायः दुश्मनी से लिया जाता है। लोकगायन की परंपरा में बैर का अर्थ 'द्वन्द्व' या 'संघर्ष' माना गया है। बैर तार्किक प्रश्नोत्तरों वाली वाक् युद्ध पूर्ण शैली है। इसमें अलग अलग पक्षों के बैर गायक गूढ़ रहस्यवादी प्रश्नों को दूसरे पक्ष से गीतों के माध्यम से पूछते हैं। दूसरा पक्ष भी अपने संचित ज्ञान का समुद्राटन उत्तर के रूप में रखता है। बैर गायक किसी भी घटना, वस्तुस्थिति अथवा चरित्र पर आधारित सवालों को दूसरे बैरियों के समक्ष रखता है। अन्य बैर गायक अपनी त्वरित बुद्धि क्षमता से इन प्रश्नों का ताबड़तोड़ उत्तर देकर उसे निरूत्तर करने का प्रयास करते हैं। कभी कभार इन बैरियों में जबरदस्त की भिड़न्त देखने को मिलती है। हार जीत के लक्ष्य पर आधारित इस गीत का परस्पर संवादी क्रम बड़ा ही रोचक होता है। इनके प्रश्नों में ऐतिहासिक चरित्र एवं घटना तथा मानवीय प्रकृति के विविध रूप समाविष्ट रहते हैं।

फाग - कुमाउनी संस्कृति में विभिन्न संस्कारों के अवसर पर गाए जाने वाले मांगलिक गीतों को 'फाग' कहा जाता है। कहीं कहीं होली के मंगलाचरण तथा धूनी के आशीर्वाद लेते समय भी फाग गाने की परंपरा विद्यमान है। शुभ मंगल कार्यों यथा जन्म एवं विवाह के अवसर पर 'शकुनाखर' और फाग गाने की अप्रतिम परंपरा है। 'फाग' गायन केवल स्त्रियों द्वारा ही होता है। होली के अवसर पर देवालियों में 'फाग' पुरुष गाते हैं। कुमाऊँ में संस्कार गीतों की दीर्घकालीन परंपरा को हम 'फाग' के रूप में समझते हैं। फाल्गुन मास के आधार पर ही 'फाग' का प्रादुर्भाव माना जाता है। मनुष्य के गर्भाधान, जन्म, नामकरण, यज्ञोपवीत, चूड़ाकर्म

विवाह आदि संस्कारों के अवसर पर यज्ञ अनुष्ठान के साथ इन गीतों का वाचन किया जाता है। गीत गाने वाली बुजुर्ग महिलाओं को 'गीदार' कहा जाता है।

उदाहरण - शकूना दे, शकूना दे सब सिद्धि
काज ए अति नीको शकूना बोल दईणा

(शकुन दो भगवान शकुन दो सब कार्य सिद्ध हो जाएँ सगुन आखर से सारे काज सुन्दर ढंग से सम्पन्न हो जाएँ)

बोध प्रश्न

अति लघुउत्तरीय प्रश्न

- 1- 'न्यौली' का एक उदाहरण दीजिए।
- 2- फाग किस रूप में गाए जाते हैं ?
- 3- झोड़ा किस प्रकार गाया जाता है ?
- 4- चाँचरी से क्या तात्पर्य है ?

9.6 सारांश

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के उपरांत आप -

- कुमाउनी लोकगीतों का अर्थ स्वरूप तथा इतिहास समझ गए होंगे।
- आपने समझ लिया होगा कि विषयवस्तुगत आधार पर वर्गीकरण करने से आपके अध्ययन की रूपरेखा सरल और स्पष्ट हो गई है।
- कुमाउनी भाषा और बोलियों के लयात्मक स्वरूप को जान गए होंगे।
- कुमाऊँ में प्रचलित लोकगीतों की विशेष ताएँ और महत्त्व को समझ चुके होंगे।
- प्रमुख कुमाउनी लोकगीतों का परिचय प्राप्त कर चुके होंगे।

9.7 शब्दावली

आशु	-	मौखिक
उद्गार	-	प्रकट होने वाले भाव
निश्छल	-	छल रहित
उपोदय	-	उपयोगी
स्फुट	-	अन्य, प्रकीर्ण
सन्निहित	-	समाया हुआ
गीदार	-	गीतकार
शकुनाखर	-	सगुन के आखर
न्यौली	-	नवेली, नई
अप्रतिम	-	अनूठी, अनोखी
फाग	-	संस्कार गीत
बैर	-	संघर्ष
छपेली	-	क्षिप्रगति वाली

9.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

9.3 के उत्तर

- 1- पर्व संबंधी गीत
- 2- गौरीदत्त पाण्डे

3 - ऋतु गीत

9.4 के उत्तर

क (1) झोड़ा

(2) बैर

(3) फाग

9.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. जोशी, कृष्णानंद , कुमाउनी लोकसाहित्य , धार्मिक गीत ,112
2. पूर्वोक्त , संस्कार गीत (1)
3. पाण्डे त्रिलोचन ,कुमाऊँ का लोकसाहित्य , पृ -124,
4. पूर्वोक्त , पृ - 126
5. अचल, जुलाई 1938, श्रेणी - 1, श्रृंग - 6,
6. इंडियन एंटीक्वेरी ,जिल्द 14 (1885)
7. धर्मयुग , अक्टूबर 31, 1954 ,
8. लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया, खंड 9, भाग 4 ,पृ -167.
9. कुमाउनी लोकसाहित्य , देवसिंह पोखरिया , डी.डी. तिवारी , पृ 2- 12
10. पाण्डे, त्रिलोचन ,कुमाउनी भाषा और उसका साहित्य, उत्तर प्रदेश ,हिन्दी संस्थान, पृ - 190- 211
11. बटरोही , कुमाउनी संस्कृति, पृ - 13-25
12. पोखरिया, देवसिंह , कुमाउनी संस्कृति के विविध आयाम, पृ- 13- 15

9.10 उपयोगी / सहायक ग्रंथ सूची

- 1- न्यौली सतसई , डॉ.देवसिंह पोखरिया, अल्मोड़ा बुक डिपो
- 2- कुमाउनी कवि गौर्दा का काव्य दर्शन, सं. चारूचन्द्र पाण्डे
- 3- कुमाउनी भाषा , डॉ. केशव दत्त रूवाली
- 4- कुमाउनी हिन्दी शब्द कोश, डॉ. नारायण दत्त पालीवाल
- 5- कुमाऊँ का लोक साहित्य , डॉ. त्रिलोचन पाण्डे
- 6- कुमाउनी भाषा का अध्ययन, डॉ. भवानी दत्त उप्रेती

9.11 निबंधात्मक प्रश्न

- 1-कुमाउनी लोकगीतों की विशेषताएँ बताते हुए इसके महत्त्व पर प्रकाश डालिए।
- 2-कुमाउनी लोकगीतों के विषयगत आधार पर विस्तृत वर्गीकरण प्रस्तुत कीजिए।
- 3-लोकगीत क्या हैं ? कुमाउनी लोकगीतों की विविध विधाओं का वर्णन कीजिए।

इकाई - 10 गढ़वाली लोक साहित्य का इतिहास एवं**स्वरूप**

इकाई की रूपरेखा

- 10.1 प्रस्तावना
- 10.2 उद्देश्य
- 10.3 गढ़वाली लोक साहित्य का इतिहास एवं स्वरूप
 - 10.3.1 गढ़वाली और गढ़वाली लोक मानस
 - 10.3.2 गढ़वाली लोक साहित्य के संरक्षक
 - 10.3.3 गढ़वाली लोक साहित्य का क्रमिक विकास
 - 10.3.4 गढ़वाली लोक साहित्य का वर्गीकरण
 - 10.3.5 गढ़वाली लोक साहित्य की भाषा
 - 10.3.6 गढ़वाली का काव्यात्मक (गेय) लोक साहित्य
 - 10.3.7 गढ़वाली का नाट्य साहित्य
- 10.4 लोकवार्ता के रूप में प्राप्त साहित्य
- 10.5 सारांश
- 10.6 अभ्यास प्रश्न
- 10.7 पारिभाषिक शब्दावली
- 10.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 10.9 संदर्भ ग्रंथ सूची
- 10.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 10.11 निबन्धात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

लोक का अपना एक स्वतंत्र अस्तित्व होता है उसके प्रभामंडल की परिसीमा में उसकी संस्कृति, कलाएं, विश्वास, भाषा और इतिहास-धर्म सब कुछ आ जाता है। इन्हें लोक से अलग करके नहीं देखा जा सकता है। डॉ. गोविन्द चातक के अनुसार, 'लोक मानस की उद्भावना में इसके साथ ही सामूहिक जीवन-पद्धति का बड़ा हाथ होता है।' उसमें यथार्थ और कल्पना में भेद करने की प्रवृत्ति पर बल नहीं होता, इसलिए जड़-चेतन की समान अवधारणा पर उसका विश्वास बना रहता है। लोक साहित्य में यही लोक मानस बोलता है। मोहनलाल बाबुलकर 'गढ़वाली लोक साहित्य की प्रस्तावना' पुस्तक की भूमिका में इस बात को और अधिक स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि, 'साधारण जनता जिन शब्दों में गाती है, रोती है, हँसती है और खेलती है। इन सबको लोक साहित्य के अन्तर्गत रखा जा सकता है। वे लोक साहित्य की प्राचीनता के विषय में उल्लेख करते हैं कि, 'ऋग्वेद में अनेक लोक कथाएं उपलब्ध हैं। शतपथ ब्राह्मण और एतरेय ब्राह्मण में ऐसी ही गाथाएं प्राप्त होती हैं। भारतीय नाट्य शास्त्र ने भी लोक प्रचलित नाटकों को अपना विवेच्य विषय बनाया है। गुणाढ्य की वृहत्कथा, सोम देव के 'कथा सरित सागर' में लोक मानस ही वर्णित है। मध्य युगीन निजंधरी कथाओं में भी मूलरूप से लोक कथाएं ही हैं।' लोकगीतों, लोकनाट्यों, लोककथाओं, लोक गाथाओं यहाँ तक कि लोक भाषाओं में भी लोक, रसा-बसा रहता है। लोक का प्रदेय ही लोक साहित्य है। यही कारण है कि लोक को और उसके साहित्य को अलग करके नहीं देखा जा सकता है। निष्कर्षतः लोक का साहित्य ही लोक साहित्य है।

लोक को जानने - पहचानने के लिए साहित्य के इतिहास को जानना भी जरूरी है! क्योंकि लोक जैसे-जैसे आगे बढ़ता है, उसकी संस्कृति विकसित होती चली जाती है और उसका इतिहास भी संस्कृति का अनुगमन करता हुआ आगे बढ़ता रहता है। इस तरह से भाषा का संस्कृति का और लोक व्यवहार का रूप सदैव बदलता रहता है वे निरंतर परिष्कार पाते रहते हैं। लोक के इन घटकों के साथ-साथ लोक साहित्य भी अनुपद चलता रहता है। और उसके साथ-साथ साहित्य का इतिहास भी सृजित होता रहता है। अतएव 'लोक' को जानने के लिए उसकी परंपराएं, रीतिरिवाज, जातीय विश्वास मिथक, आदि को जानना जरूरी होता है। बिना इन्हें जाने आप लोक को नहीं समझ पाएंगे। लोक को समझने में लोक साहित्य पथ प्रदर्शक का कार्य करता है। अतः लोक साहित्य के स्वरूप को जानना भी हमारे लिए परम आवश्यक हो जाता है। लोक साहित्य के स्वरूप के अन्तर्गत, लोक साहित्य की भाषा, उसकी प्रकृति, सभी गद्य-पद्य नाटक आदि विधाएं, उसकी सृजन प्रक्रिया भेद-उपभेद, और सौन्दर्य तत्वों का गम्भीर अध्ययन आवश्यक होता है। अतएव लोक साहित्य के स्वरूप के साथ-साथ उसके क्रमिक वृद्धिगत इतिहास पर भी आपकी दृष्टि रहनी चाहिए।

10.2 उद्देश्य

‘गढ़वाली लोक साहित्य’ अन्य भारतीय प्रदेशों के लोक साहित्य की तरह रोचक और लोक मानस का प्रतिनिधित्व करता है। अतएवं ‘गढ़वाली लोक मानस’ के लोक साहित्य के क्रमिक इतिहास को समझना ही इस इकाई लेखन का मुख्य उद्देश्य है। इस का अध्ययन करने से आप गढ़वाली लोक मानस के स्वभाव उनकी प्रवृत्तियों, उनके लोक साहित्य में लोक विश्वासों, मिथकों तथा उनके लोक साहित्य की बनावट व बुनावट के बारे में जान सकेंगे तथा साथ ही आप गढ़वाली लोक साहित्य के उद्भव एवं विकास के क्रमबद्ध इतिहास को भी जान सकेंगे।

10.3 गढ़वाली लोक साहित्य का इतिहास एवं स्वरूप

10.3.1 गढ़वाल और गढ़वाली लोक मानस

हरिकृष्ण रतूड़ी के अनुसार, “बावन गढ़ों के कारण इस प्रदेश का नाम गढ़वाल पड़ा है। लगभग 1500 ई. में राजा अजयपाल ने इन बावन गढ़ों को जीतकर सबको अपने राज्य में मिला दिया। तब से इस पूरे पर्वतीय प्रदेश को जिसमें वे बावनगढ़ थे गढ़वाल कहा जाने लगा। एच0जी बाल्टन ने अपनी पुस्तक ‘ब्रिटिस गढ़वाल गजेटियर’ में बहुत सारे गढ़ों वाला अंचल (गढ़वाल) प्रकारान्तर से कहा है। पातीराम ने अपनी किताब ‘गढ़वाल एन्सेन्ट एंड मॉडर्न’ में ‘गढ़पाल से गढ़वाल’ नाम पड़ा स्वीकार किया है। डॉ. हरिदत्त भट्ट शैलेश’ ने अपनी पुस्तक गढ़वाली भाषा और उसका साहित्य में लिखा है, ‘मेरी मान्यता है कि गढ़वाल शब्द गडवाल से निकला है। ‘गड़ और वाड’ ये दोनों शब्द वैदिक संस्कृत के हैं। और इनका गढ़वाली भाषा में प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ है’।

‘गाड़’ बड़ी नदी और ‘गड़’ छोटी नदियों जैसे -दुण्णड, लोधगड आदि। यहाँ अनेक गड़ छोटी नदियाँ हैं। इसलिए गड़वाल छोटी-छोटी असंख्य नदियों का प्रदेश गढ़वाल हुआ। वाल-वाला। वाल शब्द गढ़वाली में बहुत प्रयुक्त होता है। जैसे -सेमवाल, डंगवाल आदि।

कविवर भूश ण ने भी अपनी एक कविता में इस भूभाग के लिए ‘गडवाल’ शब्द का प्रयोग निम्न पद्य में किया है-

“सुयस ते भलो मुख भूश ण भनैगी वाटि

गडवाल राज्य पर राज जो बखानगो।”

यहां के मूल निवासी कौन थे, यह कहना कठिन है। प्रागैतिहासिक काल में यहां कक्ष-किन्नर, गन्धर्व, नाग, किरात, कोल, तंगण, कुलिन्द, खस आदि जातियाँ निवास करती थी। इस के मध्य भाग में कोल, भील और राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र और बंगाल से यहां बसी हुई जातियाँ निवास करती हैं। जिन्हें अब गढ़वाली कहते हैं। वर्तमान में उत्तर भारत के अनेक नगरों में रहने वाले लोग यहाँ बसने के लिए ललायित रहने लगे हैं। यह यहाँ की संस्कृति, प्राकृतिक छटा और शान्त वातावरण का प्रभाव माना जा सकता है। गढ़वाली लोक मानस, भोला-भाला, आस्तिक, प्रकृति प्रेमी, शान्त और परम्परावादी है। वह लोक अनुश्रुतियों, रूढ़ियों, देवीदेवताओं की पूजन की विविध परम्पराओं और वीर योद्धाओं, प्रेमियों, धार्मिकों के चरित्र से प्रभावित

रहता है। अनेक वाह्य समागतों के गढ़वाल में बस जाने पर अब गढ़वाली जनमानस उनकी संस्कृति को भी अपनाने लग गया है। विवाह के अवसरों पर 'पंजाबी भाँगडा' गुजराती 'गरबा' राजस्थानी नृत्यगान भी लाकप्रिय हाते जा रहै हैं। बाहर से आए वाद्य वादक, बैंड की धुन में गढ़वाली गीतों को ऐसे गाते और बजाते हैं जैसे वे वर्षों से यहीं बसे हों। गढ़वाली जनमानस ने अपनी परम्पराओं के साथ, देव पूजन आदि में और त्योहारों की रीति नीतियों में भी भारी परिवर्तन करके अपने मिलनशील स्वभाव और घुलनशील संस्कृति का परिचय दे दिया है। गढ़वाली लोक मानस की भाषा का नाम भी इस प्रदेश के नाम के अनुसार 'गढ़वाली' ही है। गढ़वाल की भाषा गढ़वाली। गढ़वाली में वैदिक संस्कृत, और शौरसेनी प्राकृत के शब्द अधिक संख्या में मिलते हैं। द्रविड़ भाषा के शब्द और उर्दू, अंग्रेजी, हिन्दी तथा राजस्थानी, गुजराती, महाराष्ट्री भाषाओं के अनेक शब्दों को गढ़वाली जनमानस ने अपनी भाषा में स्थान दिया है। अब वे इस भाषा में ऐसे घुल-मिल गए हैं कि उनका स्वतंत्र अस्तित्व सरलता से पता नहीं लगता है। भाषा के साथ यहाँ का साहित्य भी बंगाली, राजस्थानी, और गुजराती साहित्य से आंशिक प्रभावित जान पड़ता है।

यहाँ की वीरगाथाएं, लोककथाएं और पवाड़ों का स्वर सरगम बहुत कुछ राजस्थानी से प्रभावित लगता है। वीरता, प्रेम, प्रतिज्ञा पालन, धर्म रक्षा, दैवीशक्तियों पर विश्वास, जादू-टोना, नृत्यगान में अभिरूचि आदि इसके प्रमाण हैं। प्रकृतिप्रेमी गढ़वाली लोक मानस की गंगा जी और चारोंधामों (बद्रीनाथ, केदार नाथ, गंगोत्री और यमनोत्री) में अगाध श्रद्धा है। देश की सीमा पर आज भी यहाँ के वीर सैनिक तैनात हैं जो कि देशभक्ति, और कर्तव्यपरायणता के प्रतीक बनकर गढ़वाली लोक मानस की एक दिव्य छवि, देश और विश्व के आगे रखते हैं। तथापि शराबखोरी, अकर्मण्यता आदि दुर्गुणों से भी यहाँ का लोकमानस मुक्त नहीं माना जा सकता है।

10.3.2 गढ़वाली लोक साहित्य के संरक्षक

गढ़वाली का लोक साहित्य गद्यात्मक और पद्यात्मक दो रूपों में प्राप्त होता है। बहुत-सा अलिखित साहित्य श्रुति परम्परा से बाजगियों, व पंडितों द्वारा रटा-रटाया होने से सुरक्षित है। यहाँ के लोक ने वीरों की गाथाओं को परम्परा से गा-गाकर सुरक्षित रखा, नानी ओर दादियों ने लोक कथाओं, बालगीतों (लोरियों) और ऐणा-मेणा (पहैली और लोकोक्तियों) को बच्चों को सुना-सुनाकर जीवित रखा है। साथ ही जागरियों, और पवाडा गायकों ने देव गाथाओं तथा श्रंगार वीरता से भरे, गीतों तथा वार्ताओं व कथासूत्रों को सुरक्षित रखकर अपने कर्तव्य का पालन किया है। गढ़वाली के लिखित साहित्य को खोजने का काम अंग्रेज विद्वानों तथा अधिकारियों ने सर्व प्रथम किया, मध्य पहाड़ी और गढ़वाली बोली लोक साहित्य के संकलन में एटकिन्सन के साथ उनके गढ़वाली विद्वानों का अवदान सराहनीय रहा है। जिनमें स्व० तारादत्त गैरोला' पादरी मिस्टर ओकले, भजन सिंह, सिंह, डॉ. गोविन्द चातक आदि का नाम अग्रगण्य कहा जा सकता है। डा० गोविन्द चातक ने जहाँ लोक गीत- और लोक कथाओं तथा लोक गाथाओं का संकलन किया, वहीं मोहनलाल बाबुलकर ने गढ़वाली लोक साहित्य का विवेचन करके उसके स्वरूप तथा विकास को दर्शाया है। इन्होंने ही पहली बार लोक साहित्य का वैज्ञानिक विवेचन

प्रस्तुत किया। चातक जी ने गढ़वाली लोक साहित्य को एक साथ अनेक पुस्तकों में हिन्दी अनुवाद के साथ प्रस्तुत किया है। डॉ. हरिदत्त भट्ट 'शैलेश' ने गढ़वाली के भाषा तत्व पर अनुसंधानपरक ग्रंथ लिखे (गढ़वाली भाषा और उसका साहित्य) उनकी उल्लेखनीय पुस्तक है। सुप्रसिद्ध लेखक भजन सिंह, सिंह, जनार्दन काला, अबोध बंधु, बहुगुणा, डॉ. महावीर प्रसार लखेड़ा, कन्हैयालाल डंडरियाल, डॉ. प्रयाग दत्त जोशी, डॉ. जगदम्बाप्रसाद कोटनाला और डॉ. नन्दकिशोर ढौंडियाल ने गढ़वाली लोक साहित्य के लेखन एवं संवर्धन में उल्लेखनीय कार्य किया है।

10.3.3 गढ़वाली लोक साहित्य का क्रमिक विकास

मोहनलाल बाबुलकर ने अपनी पुस्तक गढ़वाली लोक साहित्य की प्रस्तावना में गढ़वाली लोक भाषा के लिखित विकास के पाँच चरण माने हैं। (1) आरम्भिक युग (2) गढ़वाली युग (3) सिंह युग (4) पाँधरी युग (5) आधुनिक युग। वे लिखते हैं, कि गढ़वाली भाषा में लिखित परंपरा सन् 1800 से प्रारम्भ हुई प्रतीत होती है। इस संदर्भ में भी विद्वानों के अनेक मत हैं। कई विद्वान गढ़वाली भाषा की लिखित परम्परा सन् 1850, तो कोई 1852, तथा कोई 1900 ई. को आधुनिक युग, अथवा आरम्भिक युग मानते हैं। प्रारम्भ की रचनाएं हरिकृष्ण दौर्गादत्ति, हर्षपुरी लीलानन्द कोटनाला की हैं। सन् 1892 में गढ़वाली भाषा में मिशिनरियों ने बाईबिल प्रकाशित की, और गोविन्द प्रसाद घिल्डियाल की गढ़वाली हितोपदेश छापी। प्रारम्भिक युग की दो कवितायें, चेतावनी, और 'बुरो संग' (हर्षपुरी) जी की है। गढ़वाली युग गढ़वाली पत्र के प्रकाशन से प्रारम्भ होता है। 1905 में गढ़वाली के अंक में प्रकाशित 'उठा गढ़वालियों' सत्यशरण रतूड़ी की रचना थी, जिसने गढ़वाली मानस को झकझोर दिया था। चन्द्रमोहन रतूड़ी, आत्माराम गैरोला, तारादत्त गैरोला, गिरिजादत्त नैथानी, विश्वम्भर दत्त चन्दोला बल्देव प्रसाद शर्मा 'दीन' की रामी तारादत्त गैरोला की सदेई और योगेन्द्र पुरी की फुलकंडी, चक्रधर बहुगुणा की रचना मोछंग तोताकृत गैरोला का प्रेमीपथिक भवानीदत्त थपिलियाल के, जयविजय और प्रहलाद नाटक ने गढ़वाली के पद्य और नाट्य साहित्य की श्रीवृद्धि की। गढ़वाली छन्दमाला (लीलानन्द कोटनाला) तथा गढ़वाली पखाणा (शालीग्राम वैष्णव) की कालजयी कृतियाँ हैं। भजन सिंह 'सिंह' अपने कृतित्व से एक युग प्रवर्तक कवि और लेखक के रूप में गढ़वाली लोक साहित्य में अवतरित हुए। उनका युग उनके नाम से ही ('सिंह युग') कहलाने लगा। इस कालखंड के लोक साहित्यकारों में भजनसिंह, सिंह के अतिरिक्त कमल साहित्यलंकार, विशालमणि शर्मा, ललिताप्रसाद 'ललाम' सत्यशरण रतूड़ी उल्लेखनीय हैं। पांथरी युग के कर्णधार भगवती प्रसाद पांथरी थे। उनकी रचना बजवासुरी के बाद भगवतीचरण 'निर्मोही' की हिलांश पुरुषोत्तम डोभाल की वासन्ती तथा भगवतीप्रसाद पांथरी लिखित नाटक भूतों की खोह, पाँचफूल उल्लेखनीय कृतियाँ हैं। इस युग के स्वनाम धन्य कवियों में अबोधबन्धु बहुगुणा, कन्हैयालाल डंडरियाल, गिरधारी प्रसाद कंकाल सुदामाप्रसाद प्रेमी, सच्चिदानन्द कांडपाल, उमाशंकर 'सतीश' डॉ. पुरुषोत्तम डोभाल, आदित्य राम दुदपुड़ी, महावीर प्रसाद गैरोला, जीतसिंह नेगी और डॉ. गोविन्द चातक उल्लेखनीय हैं। आधुनिक युग के गढ़वाली

लोक साहित्यकारों में नरेन्द्र सिंह नेगी, मधुसूदन थपलियाल, कुटुज भारती, निरंजन सुयाल, लोकेश नवानी, रघुवीर सिंह रावत 'अयाल', महैन्द्र ध्यानी और चन्द्र सिंह राही प्रमुख हैं

10.3.4 'गढ़वाली लोक' साहित्य का वर्गीकरण

(क) लोक गाथा - गढ़वाली लोक साहित्य को विशेष कर लोक गाथाओं को डॉ. गोविन्द चातक ने चार भागों में बाँटा है-

(1) धार्मिक गाथाएं (2) वीरगाथाएं (3) प्रणय गाथाएं (4) चैती गाथाएं। इनमें अधिकांश धार्मिक गाथाओं का आधार पौराणिक है। वीरगाथाओं में तीलूरौतेली, लोदी रिखोला, कालू भंडारी, रणरौत, माधोसिंह भण्डारी की प्रमुख गाथाएं हैं। प्रणय गाथाओं में, तिल्लोगा (अमरदेव सजवाण) राजुला मालूशाही तथा धार्मिक गाथाओं में पाण्डव गाथा, कृष्ण गाथा, कुद्रू-विनता, और सृष्टिउत्पत्ति गाथा मुख्य है।

(ख) लोक कथा - कथा शब्द संस्कृत की 'कथ्' धातु से बना है। जिसका अर्थ है 'कहना'। कहना से ही कहानी बनी है। कथसे 'कथा' शब्द निष्पन्न हुआ है। लोक अपनी बात को अपने कथन को जिस विधि से कहता है वही लोककथा है। लोक कथा में लोक मानस की अपनी व्यथा-कथा और कल्पना, तथा रहस्य-रोमांच, विश्वास, रीति-रिवाज व्यवस्था, रूढ़ि और मिथक (लोक विश्वास) कार्य करते हैं। इन्हीं से लोक का हृदय कथा बुनता है। उसमें प्राण डालता है और लोक ही उसे मान्यता भी देता है। लोक कथाएं लोक का प्रतिनिधित्व करती हैं। गढ़वाली में कथा-कानी, बारता तीनों शब्दों का व्यवहार होता है। गढ़वाली की लोक कथाएं अपने वर्ण्य विषय के कारण निम्नवत् वर्गीकृत हैं - 1 'देवी-देवताओं की कथाएं', 2 परियों, भूतों, प्रेतों की कथाएं 3 आँछरियों की कथाएं 4 वीरगाथाएं 5 पशु पक्षियों की कथाएं 6 जन्मान्तर-पुनर्जन्म की कथाएं 7 रूपक और प्रतीक कथाएं 8 लोकोक्ति अप्सराओं की कथाएं। पक्षियों की गढ़वाली कथाएं निम्न रूपों में वर्गीकृत की गई हैं -

पक्षीकथाएं - चोली, घिडूडी, घुमती, कौआ, पता पुरकनी, जिस्ता, हाथी-टिटों, समुद्रभट्कुरू, करै, कठफोड़वा, सतरपथा-पुरै-पुरै, सौत्यापूत पुरफुरै, तिलरू, स्याल।

पशुकथाएं - स्याल हाथी की कथा / स्याल बाघ की कथा/ स्याल भगवान की कथा/ ऊँट हाथी की कथा, बाघ और बटोही की कथा/ हिरण स्याल और कौआ/ स्याल और तीतर।

ज्ञान नीति की कथाएं - अच्छी सलाह / दुख: में चितैकी, वफादार कुत्ता, महत्त्वाकांक्षा आदि इस प्रकार लोक कथा के अन्तर्गत कतिपय लोक कथाएं (देव विषयक) भी गिनी जा सकती हैं।

व्रत कथाएं - पूर्णमासी, बैकुंठ चतुर्दशी, शिवरात्री, संकटचौथ आदि की कथा भी गढ़वाली लोक साहित्य में प्रकारान्तर से प्राप्त होती है।

व्यंग्य कथाएं - कन्हैयालाल डंडरियाल की हास्य व्यंग्य कथा के अन्तर्गत 'सत्यनारायण की कथा' इसका उदाहरण है। वर्तमान समय में श्री नरेन्द्र कठैत की व्यंगात्मक कथाएं / कहानियाँ बहुचर्चित हो रही हैं जिसमें उनकी 'धनसिंगै बागी फस्ट' कुल्ला-पिचकरी, कृतियाँ उल्लेख्य हैं।

10.3.5 गढ़वाली लोक साहित्य की भाषा

गढ़वाली के लोक साहित्य से पहले हम आपको गढ़वाली भाषा के लिखित रूप से परिचित कराएंगे। गढ़वाली भाषा की पहली विशेषता यह है कि गढ़वाली उकार बहुला भाषा है और इसकी उत्पत्ति शौरसेनी अपभ्रंश से हुई है। गढ़वाली भाषा के आरम्भिक लिखित रूप का पता देवप्रयाग मंदिर के सन् 1335 के महाराजा जगतपाल के दान पात्र से चलता है यह विवरण गढ़वाली भाषा में निम्नवत् है -

“श्री संवत् 1412 शाके 1377 चैत्रमासे शुक्ल पक्षे चतुर्थी तिथौ रविवासरे जगतीपाल रजवार ले0 शंकर भारती कृष्ण भट्ट कौं रामचन्द्र का भट्ट सर्वभूमि जाषिनी कीती जी यांटो मट सिलापट”।

अब देवलगढ़ में महाराज अजयपाल (1460-1519) का लेख देखिए

‘अजैपाल को धरम पाथो भंडारी करौं उक’ ।

अब महाराजा पृथ्वीशाह (1664) का गढ़वाली में लिखा लेखांश प्रस्तुत है “श्री महाराजा पृथ्वीपति ज्यू का राज्य समये श्री माधोसिंह भंडारी सुत श्री गजेसिंह ज्यू की पलि परम् विचित्र श्री मथुरा वौराणी ज्यूल तथा तत्पुत्र अमरसिंह भंडारी ज्यूल पाट चढ़ाया प्रतिष्ठा कराई.....” इन लेखों में दी गई गढ़वाली भाषा को पढ़कर अब आप जान गए होंगे कि इसमें गढ़वाली के साथ संस्कृत शब्दों की भरमार है

‘ग्रियर्सन’ ने गढ़वाली के विषय में लिखा है कि “यह स्थान-स्थान पर बदलती है। यहाँतक की परगनै की बोली का भी अपना भिन्न रूप है, प्रत्येक का अपना स्थानीय नाम भी है फिर भी गढ़वाली का अपना एक आदर्शरूप (स्टैण्डर्ड) है।” ग्रियर्सन ने गढ़वाली के आठ भेद माने हैं जो निम्नलिखित हैं -

1- श्रीनगरी 2- नागपुरिया 3-बधाणी, 4-दसौल्या 5-राठी 6- टिहरियाली 7- सलाणी 8-माझ-कुमैय्या ।

“किसी आदमी के दो लड़के थे” इस वाक्य में इन भाषाओं के रूप देखिये-

- 1- श्रीनगरी- कै आदमी का द्वी नोन्याल छया ।
- 2- नागपुरिया- कै वैख का दुई लौंडा छया ।
- 3- दसौल्या- कई आदमी का दुई लडीक छया ।
- 4- बधाणी- कै आदमी का द्वि छिचौड़ी छिया ।
- 5-राठी- कै मनख की द्वी लौड़ छाया ।
- 6- टिहरियाली- एक झणा का द्वी नौन्याल थया ।
- 7-सलाणी- कै झणा का दुई नौना छया ।

इस उदाहरण से आप समझ गए होंगे कि गढ़वाली की क्रियाएं एवं वाक्य स्थान-स्थान व (प्रत्येक जिले) में भिन्न हैं। फिर भी वे अच्छी तरह समझ में आ जाती हैं। संस्कृत से बिगड़े हुए तद्भव और शौरसेनी प्राकृत से ये रूप प्रभावित प्रतीत होते हैं। अब हम आपको गढ़वाली के लिखित लोक साहित्य की संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित जानकारी दे रहे हैं।

10.3.6 गढ़वाली का काव्यात्मक (गेय) लोक साहित्य

हर्षपुरी जी जिनके विषय में आप पहले भी अध्ययन कर चुके हैं उनके द्वारा लिखित कविता 'बुरोसंग' गढ़वाली में लिखित पहली गेय कविता है। जिसकी बानगी (स्वरूप) इस प्रकार है-

“अकुलौ माँ मायाँ करी कैकी बी नी पार तरी।
बार विधा सिर थरी, वैकु वि कू रोयेंद” ॥

इन्हीं का एक विरह गीत देखिए -

“आयो चैतर मास सुणा दौं मेरी ले सास।
वण-वणूडे सबी मौलीं गैन चीटे मौलिगैँन घास ॥
स्वामी मेरो परदेश गै तो द्वी तीन होई गैन मास।
अज्यू तई सुणी नीमणी ज्यू को ह्वेगे उत्पास ॥
जौ का स्वामी धरू छन तौंको होयुं छ विलास।
रंग-बिरंगे चादरे-ओढ़ी अड़ोस-पड़ोस-सुहास” ॥

सन् 1905 में गढ़वाली पत्र के प्रकाशन के बाद का कालखंड “गढ़वाली युग” के नाम से जाना जाता है। गढ़वाली युग के कवि सत्यशरण रतूड़ी की कविता द्रष्टव्य है।

“उठा गढ़वालियों, अब त समय यो सेण को नीछ
तजा यही मोह-निद्रा कू अजौं तैं जो पड़ी हीं छ।
अलो! अपणा मुलक की यीं छुरावा दीर्घ निद्रा कु
सिरा का तुम् इनी गेहरी खड़ा या जीनं गेर याल्ये
अहो ! तुम भरे त देखा कभी से लोक जग्यां छन
जरा सी आँख त खवाला कनोअब घाम चमक्यँछ” ।

तोता कृष्ण गैरोला के प्रेमी पथिक में कल्पना और रसान्विति इतनी सुन्दर है कि कविता में प्रकृति का बिंब स्पष्ट दृष्टि गोचर होने लगता है मन्दाक्रान्ता छन्द ने उनकी कविताओं पर चार चाँद लगा दिए हैं -

चंदा आध सरद पर थै सर्कणी बादल्यँमा
कॉसी की-सी थकुलि रड़नी खत्खली खूल्यँमा।
निन्योर ये निजन बण का नौवल्ये गीत गाणी
शर्दे रातैं शरदि लगणी, शीतली पौन-पाणी ॥

अर्थात् आधा चन्द्रमा आसमान में बादलों के बीच में कॉसे की थाली के समान रगड़ खाते हुए चल रहा है। नीचे धरती में निम्यारे

झिल्लीयाँ निर्जन वन में (झन-झन करते हुए) नए नवेली के गीत गा रहे हैं। शरद की रातों में सर्दी बढ़ जाने से पानी और हवा भी ठंडी हो गई है।

सिंह युग अथवा समाज सुधार युग - इस युग के मूर्धन्य कवि भजन सिंह 'सिंह' थे। उनके नाम से गढ़वाली कविता साहित्य का यह युग सिंह युग कहलाया। इस युग की कविताएं छन्दबद्ध,

अलंकृत और समाज सुधार की भावना से ओत-प्रोत हैं। कविवर भजन सिंह 'सिंह' के सिंहनाद की कविता उदाहरणार्थ प्रस्तुत है -

फ्रांस की भूमि जो खून से लाल छ
 उख लिख्यो खून से नाम गढ़पाल छ
 रैंदि चिन्ता बडौं तै बड़ा नाम की
 काम की फिर्क रैंदी न ईनाम की
 राठ मा गोठ मौं को अमर सिंह छयो
 फ्रांस को लाम या भर्ति ह्वै की गयो।
 ज्यौं करी धर मूं लाम पर दौड़िगे
 फ्रांस मा, स्वामि का काम पर दौड़िगे।
 नाम लेला सभी माइ का लाल को
 जान देकी रखे नाम गढ़वाल को।

इस तरह सिंह युग की सभी कविताएं प्रायः देशभक्ति और बलिदान के साथ ही प्रकृति चित्रण तथा समाज सुधार-उद्यम, पुरूषार्थ आदि से ओत प्रोत हैं। आत्माराम गैरोला 'गढ़वाली युग' की एक श्रेष्ठ काव्य विभूति माने जाते हैं। उनकी कविता "पंछीपंचक" से उदाहरण प्रस्तुत है -

अरे जागा कागा कब बिटि च कागा उड़ि उड़ी
 करी काका काका घर घर जागोणू तुम सणी।
 उठी गैन पंछी करण लागि गैन जय-जय
 उठा भायों जागा भजन बिच लागा प्रभुजि का।
 घुमूती घूगूती घुगति घुगता की अति भली
 भली मीठी बोली मधुर मदमाती मुदमयी।

गढ़वाली में रचित यह कविता बहुत बड़ी है और शिखरणी छन्द में रची गई है। इसकी काव्यात्मक लय और शब्दावली संस्कृत के प्रभाव को लिए है।

बलदेव प्रसाद 'दीन' संवाद काव्य लिखने में अधिक सफल रहै हैं, उनकी लोक प्रिय रचना 'रामी' (बाटा गोडाई) और जसी आज भी गढ़वाली जनता के मुख से सुनी जा सकती है। रामी का संक्षिप्त काव्यरूप प्रस्तुत है -

बाटा गोडाई क्या तेरो नौं छे, बोल बौराणि कख तेरो गौं छ?
 बटोही-जोगी ! न पूछ मैकू। केकु पुछदि, क्या चैंद त्वैकू ?
 रौतु की बेटि छौं, रामी नौछ। सेठु की ब्वारी छौं, पालि गौंछ।

विरह गीत लिखने में गढ़वाली कवि अधिक सफल हुए हैं क्योंकि पर्वतीय नारी की विवसता पति के परदेश जाने के कारण और बढ़ जाती है। गढ़वाल का प्राकृतिक सौंदर्य, विरहणी नायिकाओं (नवविवाहिताओं) को अधिक सताता है। कवियों ने इन गढ़वाली विरहणियों के हृदय की चीत्कार और कर्मव्यथा को निस्सन्देह अपनी कविताओं और काव्य रूपों (खण्ड

काव्य) (गीति काव्य) या (गीतिनाट्य) में प्रखर स्वर दिया है। पुरूश की विरह दशा का वर्णन चक्रधर बहुगुणा ने अपने कविता संग्रह मोछंग की छैला कविता में इस प्रकार किया है -

जिकुड़ि धड़क धड़क कदी, अपणि नी छ वाणी ।
छैला की याद करी उलरिगे परागी ।
पखन जखन सरग गिडिके, स्यां स्यां के विजुलि सरके
ढाँडु पड़ तड़-तड़ के,रूण झुण के पाणी
छैला की याद करी उलगिरे पराणी ॥

पांथरी युग - भगवती प्रसाद पांथरी की कृति 'बजबांसुली' से यह युग शुरू होता है। इस परम्परा में 'भगवतीचरण' निर्मोही की 'हिलांस' काव्यत्व की दृष्टि से उच्च कोटि की कृति मानी गई है। कहानी संग्रह भी इस युग में खूब निकले 'पाँच फूल' पांथरी जी का कहानी संग्रह है। भूतों की खोह, 'वासन्ती' आदि उनकी उल्लेखनीय कृतियाँ हैं। इस युग के लेखकों में अबोधवन्धु बहुगुणा ने 'तिड़का, मण्डाण, घोल' अन्तिमगढ़ आदि प्रख्यात रचनाओं से अपनी विशेष पहचान बनाई थी। उन्होंने गढ़वाली का पहला महाकाव्य "भूम्याल" भी रचा। कन्हैयालाल डंडरियाल का महाकाव्य नागरजा' इसी युग का प्रदेय है। भले ही यह काव्य बहुत बाद में प्रकाशित हो पाया। कुएड़ी, अज्वाल, मंगतु उनकी श्रेष्ठ काव्य कृतियाँ हैं। उनके गढ़वाली नाटक जो अभी तक अप्रकाशित हैं दिल्ली और मुम्बई में मंचित किए गये। उनका व्यंग्य 'बागी उप्पन की लड़ै' लोक प्रिय खण्ड काव्य है। उनका 'नागरजा' एक कालजयी गढ़वाली महाकाव्य है। गिरधारी प्रसाद 'कंकाल', सच्चिदानन्द कांडपाल, डॉ. हरिदत्त भट्ट 'शैलेश' डॉ. गोविन्द 'चातक' डॉ. पुरूषोत्तम डोभाल, जीत सिंह नेगी आदि इस युग के श्रेष्ठ गढ़वाली साहित्यकार माने जाते हैं। इस काल खण्ड में मोहनलाल बाबुलकर एक समीक्षक के रूप में उभरे हैं। इस युग में गढ़वाली साहित्य में शिल्प की दृष्टि और वर्ण्य विषयों की विविधता से एक क्रान्तिकारी परिवर्तन आया। गढ़वाली में लिखे नाटकों की संख्या के विषय में बाबुलकर जी का मत है कि "इनकी संख्या लगभग 67 है। नाटक लेखकों में ललित मोहन थपलियाल, स्वरूप ढौडियाल, अबोध बन्धु बहुगुणा, कन्हैयालाल डंडरियाल, महावीर प्रसाद गैरोला, उमाशंकर सतीश और नित्यानन्द मैथानी प्रमुख हैं।

आधुनिक युग:- डॉ. जगदम्बा प्रसाद कोटनाला इसे चतुर्थ चरण कहते हैं। इस कालखंड में चन्द्रसिंह राही का 'रमछोल' 2382 प्रकाश में आया। आत्माराम फोन्दानी का गीत संग्रह 'रैमोडी' के गीतों ने लोकरंजन किया उसके बाद 'चिन्मय सायर' मधुसूदन प्रसाद थपलियाल, निरंजन सुयाल, कुटजभारती के काव्य प्रकाश में आए। मधुसूदन प्रसाद थपलियाल ने गढ़वाली में गजल विधा को आरम्भ किया। उनकी काव्य पुस्तकें 'कस-कमर' और 'हर्षि-हर्वि' लोक प्रिय रही हैं। हास्य व्यंग्य विधा में कन्हैयालाल डंडरियाल द्वारा बनाए काव्य मार्ग पर सर्व प्रथम (रघुवीर सिंह 'अयाल') चले। अयाल जी के दो काव्य गुढयार (1988) पूर्णतः हास्य -व्यंग्य के छलकते रस कलश हैं। हास्य व्यंग्य विधा को ललित केशवान ने 'दिख्यांदिन तप्यांघाम' (1994) रचकर चरम शिखर तक पहुंचाने का प्रयास किया है। लोकेश नवानी की 'कभी दिल्ली

निजों' सुप्रसिद्ध लोक प्रिय रचना स्वीकारी गई। कतिपय नए रचनाकार भी लगातार वर्तमान काल की समस्याओं को अपनी हास्य-व्यंग्यमय कविताओं को व्यंजना और वक्रोक्ति द्वारा अभिव्यक्त करने में सफल हो रहे हैं। नरेन्द्र कठैत का साहित्य इसका प्रमाण है। बाल साहित्य की कमी गढ़वाली में पहले से ही बनी रही है। अबोध बन्धु के 'अंख-पंख' के बाद कोई उत्कृष्ट बाल रचनाएं प्राप्त नहीं हुई हैं। नए लेखक भी इसकी उपेक्षा कर रहे हैं। इस कालखण्ड के साहित्य की सूची आपके सरल अध्ययन हेतु प्रस्तुत की जा रही है।

कृति का नाम	कवि/लेखक	प्रकाशन वर्ष
1- द्वी ऑसू	सुदामा प्रसाद प्रेमी	सन् 1962
2- गढ शतक	गोविन्द राम शास्त्री	” 1963
3- उज्याली	शिवानन्द पाण्डे	” 1963
4- रंत रैवार	गोविन्द चातक	” 1963
5- विरहिणी शैलबाला	पानदेव भारद्वाज	” 1964
6- वट्टे	सुदामाप्रसाद प्रेमी	” 1971
7- अग्याल	सुदामाप्रसाद प्रेमी	” 1971
8- माया मेल्वड़ी	भगवान सिंह रावत	” 1977
9- पितरूकू रैवार	गोकुलानन्द किमोठी	” 1979
10- गढ़गीतिका	बलवन्त सिंह रावत	” 1980
11- समलौण	जग्गू नौटियाल	” 1980
12- कुयेड़ी	कन्हैयालाल डंडरियाल	” 1990
13- सिंह सतसई	भजन सिंह 'सिंह'	” 1985
14- गंगू रमोला	बृजमोहन कवटियाल	” 1997
15- पार्वती	अबोधबन्धु बहुगुणा	” 1994

10.3.7 गढ़वाली का नाट्य साहित्य

उत्सव प्रिय गढ़वाली जन-मानस का चित्त जहां रमणीय अर्थवाली गीतिकाओं से आनन्दित होता रहा है, वहीं नाटकों में जो दृश्य और श्रव्य दोनों होते हैं से सर्वाधिक प्रभावित रहा है। नाटक देखने के लिए जितनी भीड़ जुटती है उतनी कविता सुनने के लिए नहीं। महाकवि कालिदास ने इसी लिए नाटक को महत्त्व प्रदान करते हुए लिखा है, 'काव्येषु नाटकं रम्यं' अर्थात् काव्यों में नाटक रमणीय है। महर्षि भरत ने, 'लोकः विश्रान्ति जनन नाट्यं- लोक की थकान मिटाने वाला, आनन्द प्रदान करने वाला, व्यवहारिक ज्ञान देने वाला, तत्व नाटक को माना है। गढ़वाली का नाट्य लेखन भवानी दत्त थपल्ल्याल के 'जय विजय' और प्रह्लाद नाटक से शुरू माना जाता है। विशम्भर दत्त उनियाल का 'बसन्ती', ईश्वरीदत्त जुयाल का परिवर्तन भगवती प्रसाद पांथरी के दो नाटक (क) भूतो की खोह (ख) अधः पतन, तथा गोविन्द चातक का 'जंगली फूल' अबोध बन्धु के नाटक- 'कचविडाल' 'अन्तिमगढ़' माई को लाल नित्यानन्द

मैथानी की 'चौडण्डी' प्रेम लाल भट्ट का 'बँटवुरू' कन्हैयालाल डंडरियाल के नाटक-कन्सानुक्रम, राजेन्द्र धस्माना का 'अर्धग्रामेश्वर' विश्वमोहन बडोला का 'चैतकी एक रात' ललितमोहन थपलियाल का नाटक 'एकीकरण' तथा उर्मिल थपलियाल का 'खाडू लापता' आदि सुप्रसिद्ध गढ़वाली नाटक हैं। इनके अतिरिक्त जीत सिंह नेगी का नाटक 'डॉडा की अएड' गोविन्द राम पोखिरियाल 'मलेथा की कूल' आदि उल्लेख्य हैं।

10.3.8 कहानी एवं उपन्यास

गढ़वाली में सर्वाधिक संख्या में कहानी लिखी गई हैं। कहानीकारों में रमाप्रसाद पहाड़ी, भगवती प्रसाद जोशी 'हिमवंतवासी' डॉ. उमेश चमोला, हर्ष पर्वतीय आदि उल्लेखनीय हैं। डॉ. गोविन्द चातक ने सर्वाधिक कार्य नाटकों पर किया है। अब हम आपके अध्ययनार्थ गढ़वाली नाटकों की भाषा के कुछ अंश संक्षेप में प्रस्तुत कर रहे हैं -

प्रह्लाद नाटक की भाषा:-

‘कालजुगी, माराज मी पर गुस्सा न होवन। सरकार, मैत सब ताड़नाकर चुक्यौ। ये पर बार-बार अर गुरू जी न भि ये तैं दिखाये खूब धुधकार-फुटकार, परन्तु ये न जरा भर भिन छोडि बोलणा, नारेण-हरिकर्तार! यां ते महाप्रभु! कुछ आपही कराये को बिचार हमते होई गयां ये ते बिलकुल लाचारा।’ -

अब विशम्भर उनियाल के वसन्ती नाटक की काव्यभाषा प्रस्तुत है -

‘दिदि, देख दौं हम लोंगू या कतना बुरो रिवाज छ कि नौन्युं को ब्यौ बुडयो से कर देंदना भई इना करण से त जैं दिन नॉनि निजै वे दिन हि दतरे द्योन त अच्छो हो। जिंदगीभर का रोण-धोण से नि होण हि भलो।’।

अब भगवतीप्रसाद पांथरी के नाटक 'अधःपतन' के संवाद देखिए -

‘नैनुक्य सोनाकि कुंजी हि प्यार को दरवाजू खोल सकदी? पर क्य कंगाल कि हृदय कि अभिलाषा धूल मा हि लिपटण का होन्दी? वे का प्यारकी कुलाई कि डालि क्या दुसरू का सुख की होलि। जन्नौण का हि लपकदि?’

राजेन्द्र धस्माना के 'अर्धग्रामेश्वर' की भाषा देखिए -

सूत्रधार- “अब ब्वनु क्या च माराज सुन्दरता मा यूडा दि छन हमरि ब्वनाच अब खुणें भग्यान वक्नन्दा तै भग्यान भि छिन, अर गरीब ब्वलन्दा ते गरीब हुई अर एक चित दिखे जा।

इस प्रकार गढ़वाली नाटकों की भाषा सशक्त और अपनी मांटी की सौंधी गंध लिए हुए है।

10.4 लोकवार्ता के रूप में प्राप्त साहित्य

लोकवार्ताएं केवल देवी-देवताओं के जागर में नृत्यमयी उपासना के बीच सुनाई जाती हैं। प्रायः रात ही उसके लिए उपयुक्त होती हैं रात में देवता का नृत्य देखने के लिए एकत्र हुए लोगों के मनोरंजन के लिए कभी वार्ताएं आवश्यक समझी जाती थीं। आज भी लोकवार्ता का महत्त्व वैसे ही बना हुआ है जैसे पहले था। लोकवार्ता का कोई भी ज्ञाता व्यक्ति मंडाण अर्थात् देववार्ता

सुनने और देवता का नृत्य देखने के लिए एक समूह के बीच में बैठते हैं और अवसर पाते ही समूह के बीच से उठकर दोनों हाथों से अपने कानों को दबाकर या उनके छिद्रों में उंगली डालकर संगीत के स्वरों में कोई वार्ता छेड़ता है वह वार्ता के आमुख के रूप में ढोल या डमरू(डौर) बजाने वाले औजी (वादक) को संबोधित करता है।

देवी देवताओं की वार्ता के समय सभी श्रोता एवं दर्शक भक्तिभाव से बैठे रहते हैं। देवी-देवताओं के समान ही अनिष्ट कारिणी शक्तियों जैसे (भूत, आँछरी) आदि की मनौती के लिए भी उन्हें नचाने खेलवाने के लिए नृत्य के साथ गीत गाए जाते हैं। उन वार्ताओं में कथा का अंश बहुत होता है और उसको रासो कहा जाता है। डॉ. गाविन्द चातक इसे 'रासो' से उत्पन्न मानते हैं उनका मानना है कि बोल-चाल में रासो का अर्थ धर्म कथा होता है। कहानी का ध्येय मूलतः मनारंजन होता है लेकिन रासो मनुष्यों को देवताओं और आँछरी, आदि के भय से निर्मुक्त करने की नृत्यमयी उपासना है। लोकवार्ता के रूप में प्राप्त साहित्य के अन्तर्गत -गढ़वाली का वृहत अलिखित साहित्य लोकवार्ता के रूप में आज भी मौजूद है। एटकिन्सन ने भी गढ़वाल के इतिवृत्त लेखन में लोकवार्ता साहित्य की मदद ली। उसने यहां की धार्मिक गाथाओं, तथा यहाँ के ऐतिहासिक अनैतिहासिक वीरों, राजाओं, महाराजाओं, वीरांगनाओं के गीतों को लोगों के मुख से सुना और उनसे यहां की सभ्यता-संस्कृति व भाषा का विश्लेषण किया। गढ़वाली लोकवार्ताएं राजस्थान, गुजरात, पंजाब, महाराष्ट्र, बंगाल के लोकवार्ता साहित्य के समकक्ष हैं। गढ़वाल की देव गाथाओं में भूगोल के साथ-साथ इतिहास की जानकारी भी मिलती है। विशेष कर तंत्र मंत्र और देव गाथाओं में पौराणिक भूगोल का वर्णन मिलता है जैसे - देवलोक जाग नागलोक जाग ! खारा समुद्र जाग, अन्तरिक्ष लोक जाग। इनके साथ ही गढ़वाल के प्रमुख पर्वत, नदी, घाटी, गुफाएं वन आदि का वृत्तान्त मिलता है। यहां के भड़ों और राजाओं की विरूदावली व वंशानुचरित भी गढ़वाली लोकवार्ता के अन्दर मिल जाते हैं।

10.5 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप –

- गढ़वाली लोक साहित्य से परिचित हो गए होंगे.
- गढ़वाली लोक साहित्य के इतिहास से भी परिचित हो गए होंगे
- गढ़वाली लोक साहित्य का क्रमिक विकास प्राप्त कर चुके होंगे
- गढ़वाली लोक साहित्य की विभिन्न विधाओं को जान गए होंगे
- गढ़वाली लोक साहित्य के विभिन्न युगों(काल-खंडों) को जान गए होंगे

10.6 शब्दावली

1. सृजित	-	बनना , निर्मित होना
2. आस्तिक	-	ईश्वर पर आस्था रखने वाला
3. मानस	-	मन, हृदय

4. मूर्धन्य	-	बड़ा, विशेष
5. चीत्कार	-	चीखना, चिल्लाना
6. उत्कृष्ट	-	अच्छा, सर्वश्रेष्ठ

10.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

प्र030 1 (क) सोमदेव (ख) गुणाड्य (ग) पातीराम (घ) योगेन्द्र पुरी

प्र030 2 (क) मिथक -पुराने लोक विश्वासों, पौराणिक कथा एवं गाथाओं को 'मिथक' साहित्य कहा जाता है। मिथक में सत्य का विस्थापन होता है। जैसे हम कहीं उषा के बाद सूर्योदय होता है तो मिथक कार उसे कहता है -सूर्य उषा का पीछा करता है।

प्र030 3 तीन प्रमुख पक्षी कथाएँ निम्नलिखित हैं:-

(1) भटकटुरू (2) चोली (3) सतर पथा-पुरै-पुरै (4) पता-पुरकनी।

प्र030 4 - अजयपाल का धर्मपाथो (अनाज मापने का बर्तन) भंडारियों के यहाँ है।

प्र030 5 - ग्रियर्सन ने गढ़वाली भाषा के विषय में कहा है कि 'यह स्थान-स्थान पर बदलती है। यहां तक कि परगने की बोली का भी अपना भिन्न रूप है। प्रत्येक का अपना स्थानीय नाम भी है। और गढ़वाली का अपना एक आदर्श (स्टैण्डर्ड) रूप है। ग्रियर्सन ने गढ़वाली के आठ भेद माने हैं।

प्र030 6 - "किसी आदमी के दो लड़के थे"। इसका रूप नागपुरी और बधाणी में निम्नवत् होगा -

(क) नागपुरिया बोली में - कै बैख का दुई लौंडा छया।

(ख) बधाणी बोली में -कै आदमी का दिव् छिचौड़ी छिया।

प्र030 7 'सिंह युग' की गढ़वाली कविताओं की 4 विशेष ताएं निम्नलिखित हैं -

(1) सुधारवादी दृष्टिकोण (2) छन्दबद्ध कविताएं व गीत (3) लोक से जुड़ी गढ़वाली भाषा का काव्यात्मक प्रयोग (4) संवाद परकता।

प्रश्नोत्तर 8- बाटागोडाई (रामी) लोक गीत - लोक काव्य के स्वचिता का नाम है -बल्देव शर्मा 'दीन'।

10.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. गढ़वाली लोककथाएं- डॉ. गोविन्द चातक, प्रथम संस्करण 2396, तक्षशिला प्रकाशन, अंसारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली।
2. गढ़वाली भाषा और उसका साहित्य- डॉ. हरिदत्त भट्ट 'शैलेश', प्रथम संस्करण 2007, तक्षशिला प्रकाशन, 98 ए, अंसारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली।
3. उत्तराखण्ड की लोककथाएं- डॉ. गोविन्द चातक, प्रथम संस्करण 2003, तक्षशिला प्रकाशन, 98 ए, अंसारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली।
4. गढ़वाली लोक साहित्य की प्रस्तावना- मोहनलाल बाबुलकर, प्रथम संस्करण अप्रैल 2004, भागीरथी प्रकाशन गृह, बौराड़ी, नई टिहरी।

5. गढ़वाली काव्य का उद्भव विकास एवं वैशिष्ट्य- डॉ. जगदम्बा प्रसाद कोटनाला, प्रथम संस्करण 2011, प्रकाशक- विजय जुयाल, 558/1, विजय पार्क, देहरादून।
6. गढ़वाली लोक गीत विविधा- डॉ. गोविन्द चातक, प्रथम संस्करण 2001 प्रकाशक (तेज सिंह) तक्षशिला प्रकाशन, अंसारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली।

10.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. गढ़वाली लोक साहित्य के इतिहास को विस्तारपूर्वक समझाइए .
2. गढ़वाली लोकसाहित्य के क्रमिक विकास की विवेचना कीजिए .

इकाई 11 गढ़वाली लोक साहित्य का वर्तमान स्वरूप एवं समस्याएं

इकाई की रूपरेखा

- 11.1 प्रस्तावना
- 11.2 उद्देश्य
- 11.3 गढ़वाली लोक साहित्य का वर्तमान स्वरूप
 - 11.3.1 गढ़वाली काव्य में काव्य तत्त्व और सौन्दर्यानुभूति
 - 11.3.2 गढ़वाली लोक साहित्य के समक्ष समस्याएं
 - 11.3.3 गढ़वाली लोक साहित्य की विधाएं
- 11.4 सारांश
- 11.5 अभ्यास प्रश्न
- 11.6 शब्दावली
- 11.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
- 11.8 संदर्भ ग्रंथ सूची
- 11.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
- 11.10 निबन्धात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

गढ़वाली लोक साहित्य भारत के अन्य प्रादेशिक/आंचलिक लोक साहित्यों की अपेक्षा समृद्ध और विकासशील स्वभाव वाला साहित्य है। इसका कारण इसकी प्राचीन (पौराणिक विरासत) और हिमालयी वातावरण में समस्त भारत के लोगों की युग-युग से आस्था तथा यहां बसने की आत्मीय (अभिलाषा) भी प्रमुख है। यही कारण है यहां के लोक साहित्य में धर्म सहिष्णुता, सामाजिक सद्भाव और करुणा तथा मैत्री के साथ, प्रेम और युद्धवीरता तथा त्याग के अनेक उदहारण मिलते हैं। यहां के लोक साहित्य में सभी धर्मों के पति प्रेम और सद्भाव के कारण, उसके अन्दर कबीर, दादू, नानक, मोहम्मद, गोरखनाथ, राम-कृष्ण, मीरा और रैदास को समान भाव से साहित्य में स्थान मिला है। प्राचीन लोक साहित्य में 'कृष्ण' और पाण्डव प्रभूत मात्रा में वर्णित है। मन्दा भगवती, राजराजेश्वरी होने के कारण यहां के लोक साहित्य की आधेय और आधार है, वह देवी के रूप में लोक साहित्य की प्रत्येक विधा में स्थान पाए है। काव्य, लोककथा, लोकगाथा, लोकनाट्य और लोकगीतों में हिमालयी प्रकृति, देवता, पितर, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, नाग और नर तथा राक्षस भी आदर के साथ साहित्य में स्थान पाए दिखते हैं। यहां के पशु-पक्षी और वृक्ष लताएं भी मानव के सहचर हैं। वे यहां के लोक के अविच्छिन्न अंग हैं। उन्हें यहां के लोकमानस से अलग हटाकर नहीं देखा जा सकता है।

इसके मौखिक साहित्य में ढोल सागर अनेक अश्रुत जागर गाथाएं, पवाड़े, विरुद आज भी अपने संग्रहकर्ताओं की बाट जोह रहे हैं। इन कलाओं को बहुत कुछ मात्रा में कुछ पुरखों ने अपनी पोथियों में लिखकर सुरक्षित किया तो कुछ को परम्परा से आवजी और पुरोहितों ने अपनी वाणी से रटकर सुरक्षित कर रखा है।

11.2 उद्देश्य

'गढ़वाली लोक साहित्य का वर्तमान स्वरूप एवं समस्याएं', नामक इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप गढ़वाली लोक साहित्य से सम्बन्धित निम्नलिखित बातों को जान सकेंगे-

1. गढ़वाली लोक साहित्य का वर्तमान स्वरूप कौन सा है ?
2. इसके अन्दर लोक साहित्य की किन-किन विधाओं में कार्य हो रहा है ?
3. परम्परागत लेखन और वर्तमानकालीन नए लेखन में किन-किन बातों में मूलभूत अन्तर आ रहा है ?
4. गढ़वाली लोक साहित्य के आगे वर्तमान में क्या-क्या चुनौतियां आड़े आ रही हैं ?
5. गढ़वाली में रचित प्रमुख महाकाव्य-खण्डकाव्य, गीति और मुक्तक काव्य कौन-कौन से हैं ?

11.3 गढ़वाली लोक साहित्य का वर्तमान स्वरूप

गढ़वाली लोक साहित्य की खोज के लिए अंग्रेज सर्वेक्षकों विलियम कुक व गिर्यसन आदि के अवदान को कभी भुलाया नहीं जा सकता है। मध्य पहाड़ी बागली पर एटकिन्सन के द्वारा किए गए कार्य को महत्त्वपूर्ण माना गया है। यहां के साहित्य को लिपिबद्ध करने और उसकी समग्र जानकारी एकत्र करके पुनः उसकी समीक्षा टीका करके फिर शोधपूर्ण विवेचना के साथ प्रकाशित करने वाले विद्वानों के अवदान को कभी भुलाया नहीं जा सकता है। इन विद्वानों में तारादत्त गैरोला, पादरी मिस्टर ओकले, आत्माराम गैरोला, यमुनादत्त वैष्णव, गोविन्द प्रसाद घिल्डियाल, शिवनारायण बिष्ट, भजन सिंह 'सिंह', डॉ. गोविन्द चातक, डॉ. हरिदत्त भट्ट 'शैलेश' मोहनलाल बाबुलकर, शिवानन्द नौटियाल और महावीर प्रसाद लखेड़ा अग्रगण्य हैं। इन विद्वानों के प्रयास से इनकी पुस्तकों से गढ़वाली लोक साहित्य के प्राचीन एवं अर्वाचीन साहित्य की जानकारी मिलती है।

गढ़वाली लोक साहित्य पर अनेक शोध प्रबन्ध भी लिखे गये हैं। सर्वप्रथम डॉ. नन्द किशोर ढौडियाल ने जागर गीतों पर शोध प्रस्तुत किए तदनन्तर डॉ. प्रयाग जोशी ने पहली बार कुमाऊं और गढ़वाल की लोक गाथाएं संश्लिष्ट विवेचन प्रस्तुत किया। उन्होंने लोक गाथाओं में बहुत कुछ नया जोड़ा है। डॉ. उमाशंकर 'सतीश' ने जौनसारी भाषा का विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया, मोहनलाल बाबुलकर ने पश्चिमी पहाड़ी की उप बोली जौनपुरी (जौनसारी) के लोक साहित्य एवं कला पर पहली विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया, विष्णुदत्त कुकरेती ने नाथ पंथ और गढ़वाल तथा बुद्धिराम बडोनी ने गढ़वाल के लोक काव्य पर प्रशंसनीय कार्य किया है। इसी श्रृंखला में 'गढ़वाली के सांस्कृतिक और सौन्दर्य शास्त्रीय परिप्रेक्ष्य' विषय पर श्रीमती आनन्दी जोशी ने तथा गढ़वाल के साहित्य-संस्कृति पर स्कन्दपुराण का प्रभाव तथा चन्द्रशेखर बडोला ने गढ़वाली कहावतों का साहित्यिक, सांस्कृतिक अध्ययन उल्लेखनीय कार्य करके गढ़वाली लोक काव्य साहित्य को जीवन्तता प्रदान की है।

गढ़वाली लोकभाषा में आज विविध विद्याओं में साहित्य उपलब्ध है। गढ़वाल पद्य में गीत संग्रह, काव्य और निबन्ध प्रभूत मात्रा में उपलब्ध है। इनका पुराना साहित्य भी प्रचुरता से उपलब्ध है। पद्य विद्या में 1822 से 1900 तक संस्कृत का प्रभाव लक्षित होता है। गीत और कविता के पुराने लेखकों में तोताकृष्ण गैरोला, आत्माराम गैरोला, चक्रधर बहुगुणा, भगवती प्रसाद निर्मोही, अबोध बन्धु बहुगुणा, कन्हैयालाल डंडरियाल, मनोहर उनियाल 'श्रीमन', सदानन्द जखमोला 'सन्तत', विशालमणि शर्मा का नाम उल्लेखनीय है। कहानी और निबन्ध लेखकों में डॉ. गोविन्द चातक, डॉ. महावीर प्रसाद गैरोला, मोहनलाल नेगी, प्रेमलाल भट्ट, दुर्गा प्रसाद घिल्डियाल प्रसिद्ध हैं। नाटक विद्या के क्षेत्र में पुरुषोत्तम डोभाल, सुदामा प्रसाद 'प्रेमी' ललितमोहन थपलियाल, स्वरूप ढौडियाल, कन्हैयालाल डंडरियाल, अबोध बन्धु बहुगुणा, नित्यानन्द मैठानी और गोविन्द चातक उल्लेखनीय हैं। गढ़वाली लोक साहित्य के अन्य हस्ताक्षरों में जीत सिंह नेगी, नरेन्द्र सिंह नेगी, गिरिधारी प्रसाद 'कंकाल', ललित केशव,

उमाशंकर 'सतीश', शेर सिंह 'गढ़देशी' और जीवनानन्द श्रीपाल का नाम आदर के साथ लिया जाता है। गढ़वाली गद्य साहित्य में व्यंग्य लेखन के अप्रतिम हस्ताक्षर नरेन्द्र कठैत साहित्य पथ पर एक मील के पत्थर सिद्ध हो रहे हैं।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद सामाजिक परिदृश्य बदला, आधी सदी से भी अधिक के इस समयान्तराल में गढ़वाली काव्य ने बहुआयामी विस्तार पाया और गढ़वाली साहित्य लेखन में भी उल्लेखनीय प्रगति हुई। इस काल खण्ड में सैकड़ों काव्य कृतियां प्रकाश में आईं, कला की दृष्टि से नौबत 1953 चक्रधर बहुगुणा: तिड़का (1956), रणभंजण (1963), पार्वती (1966), धोल (1977), भूम्याल (1977), एवं दैसत (1996) सभी अबोध बन्धु बहुगुणा चित्र काव्य एवं रोन्डेडु (1995), अश्रुमाला (1958) एवं दुदुभि: डिमडिम (1965) श्रीधर जमलोकी नवाण (1956) एवं फुर घिडुडी (1957) गिरधारी प्रसाद 'कंकाल'। ढांगा से साक्षात्कार (1988), नेत्र सिंह असवाल, पसीन की खुशबू (1989) एवं तिमला फूल (1977) चिन्मय सायर। कॉठ्यो मा ओण से पैलि (1994), देवेन्द्र प्रसाद जोशी: खुचकण्डी (1991) एवं 'गाष्पू की गंगा स्याण्यू का समोदर' (1999) नरेन्द्र सिंह नेगी। कमेड़ा आखर (1996) वीना बेंजवाल गढ़वाली काव्य की स्वातन्त्रयोत्तर उल्लेखनीय काव्य कृतियां हैं। इस काल खण्ड में विभिन्न कवियों के संयुक्त कविता संकलन भी खूब छपे हैं जिनमें 'फयूंली' (1953), मौल्यार (1963), छम घंघरु बाजला (1964), खुंदेड़ गीत सागर (1964) रंत रैबार (1963), बुरांस (1965) 'छैं' (1980) और गंगा जमुना का मैत बटि (1978) प्रमुख हैं। इनके अतिरिक्त 'बाहुली', हिडबांस, मैती, बुग्याल, बुरांस, चिटी पत्री और धादा (1978) प्रमुख गढ़वाली पत्र-पत्रिकाएं हैं। जिन्होंने गढ़वाली काव्य साहित्य को दिशा प्रदान करने में बहुमूल्य योगदान दिया है।

स्वतन्त्रता के बाद सामाजिक परिदृश्य बदल जाने पर कविता की भाव-भूमि भी बदल गई, तिड़का, फयूंली की तथा रोन्डेडु सामाजिक बदलाव के काव्य हैं। डॉ. कोटनाला का मत है कि इसके आगे अधिक गहरी पैठ बनाकर समाजवाद काव्य चेतना के जन पक्षीय संघर्ष को कविता में परिणत करने का प्रयास किया गया। भूम्याल लोकतान्त्रिक, सामाजिक मूल्यों का काव्य है। इसी समाजवादी दृष्टिकोण से रचित, अज्वाल, धैं, एक ढांगा की आत्मकथा, ढांगा से साक्षात्कार, कमेड़ा आखर, कॉठ्यो मा ओण से पौलि, तिमला फूल आदि जनसंघर्षी रचनाएं हैं। पर्यावरणीय चिन्ताओं ने कवियों को सदैव उद्वेलित किया है। प्रकृति के साक्षात्कार से युक्त स्वतन्त्रयोत्तर रचनाओं में सदानन्द जखमोला का रैबार, गढ़गुणत्याली उल्लेखनीय है। पहली पीढ़ी के कवियों के सभी गढ़वाली काव्य रसानुभूति के काव्य हैं। इसमें श्रृंगार की कोमल भावनाएं और गढ़वाली भाषा का सौष्ठव चरम पर पहुंचा है। दूसरी पीढ़ी के कवियों में गिरधारी प्रसाद 'कंकाल' तथा जीत सिंह नेगी प्रेम के कवि रहे हैं। जब नरेन्द्र सिंह नेगी को प्रेम गीतों के अतिरिक्त प्रकृति और आन्दोलन के गीत लिखने में अधिक सफलता मिली है। उनके काव्यों में साहित्यिक का पुट भी देखने में आता है। उनकी कृति 'खुचकण्डी' इस दृष्टि से पढ़नीय है। नरेन्द्र सिंह नेगी के साथ ही छन्द विधान को दुरुस्त करने में चक्रधर बहुगुणा, कन्हैयालाल डंडरियाल, गिरधारी प्रसाद 'कंकाल' का अविस्मरणीय योगदान रहा है। इन्होंने नए छन्दों का भी सृजन

किया है। शिल्प की दृष्टि से भी नए-नए प्रयोग कन्हैयालाल डंडरियाल की अँजवाल और अबोध बन्धु बहुगुणा के काव्यों में सर्वत्र दिखते हैं। अँजवाल ने तो इतना नवीन शिल्प अपनाया कि वह वर्तमान के कई कवियों का वर्ण्य और अभिव्यक्ति की शैली ही बन बैठा है। डॉ जगदम्बा प्रसाद कोटनाला ने दो टूक शब्दों में हिन्दी काव्य शिल्प के प्रधान को निम्नवत् अभिव्यक्त किया है- 'लोकधर्मी काव्य कला को छोड़कर हिन्दी काव्य शिल्प ने गढ़वाली काव्य शिल्प को अत्यधिक प्रभावित किया है'। गढ़वाली छन्द मुक्त काव्य शिल्प ने जैसे हिन्दी की नई कविता के शिल्प को अपना लिया है।

निष्कर्षतः स्वातन्त्र्योत्तर काव्य साहित्य समाजवादी विचार धारा और प्रयोगधर्मी काव्य कला से अनुप्राणित हुआ है।

महाकाव्य - अब तक गढ़वाली में दो ही महाकाव्य प्रकाश में आ सके हैं। अबोध बन्धु बहुगुणा द्वारा रचित 'भूम्याल' जिसे 'हिमालय कला संगम' ने सन् 1977 में प्रकाशित किया तथा दूसरा कन्हैयालाल डंडरियाल द्वारा रचित 'नागरजा' चार भागों में प्रकाशित हैं। नागरजा भाग 1 व 2 को गढ़वाली साहित्य परिशद्-कानपुर ने सन् 1993 ई. में तथा 2000 ई. में दूसरा संस्करण प्रकाशित किया तथा भाग 3 व 4 को कवि के पुत्र हरिकृष्ण डंडरियाल ने ब्रज मोहन सिंह राणा के सहयोग से सन् 2009 में प्रकाशित कराया। इन दो महाकाव्यों के अतिरिक्त तीसरा महाकाव्य अभी देखने में नहीं आया है। गढ़वाल में विष्णु को नागरजा तथा नरसिंह दोनों रूपों में सर्वत्र पूजा जाता है। जबकि शिव को निरंकार के रूप में पूजते हैं। गढ़वाल की टिहरी जनपद के सेम-मुखेम में नागरजा का मन्दिर है तथा सभी गढ़वाली उसकी तीर्थ यात्रा करते हैं। किंवदन्ती है कि सेम-मुखेम का नागरजा का मन्दिर गंगू रमोला ने बनवाया था। नागरजा प्रबन्धकाव्य गणेश और ब्रह्मा की वन्दना से आरम्भ होता है। ब्रह्माण्ड, रज, पुरुश, काल, महत्त्व, अहंकार, आकाश, शब्द, वायु, तेज, प्रकाश, गन्ध, भूमण्डल, पंचभूत देवता, ब्रह्मा-विष्णु, आदि के वर्णन के साथ प्रथम उपखण्ड समाप्त होता है। उपखण्ड दो तथा तीन में शिव-सती तथा शिव-पार्वती प्रसंगों में ही कवि का वास्तविक कवित्व मुखर हुआ है। कविवर डंडरियाल ने शिव और सती के कथानक को गढ़वाली लोक जीवन के अनुरूप वर्णित किया है। इस काव्य में शिव नन्दी बैल को चुगाते हैं तो सती गाय के लिए घास लाती है। यक्ष, किन्नर और गुह्यक गढ़वाली परिधान पहनकर दक्ष यज्ञ में जाते हैं। सती के दक्ष यज्ञ में भस्म होने पर दक्ष को शिवद्रोह और अहंकार का निर्मम फल मिलता है। उनके क्रोध को देखकर सब रुद्र की वन्दना करते हैं कि-

है दयामय दीनबन्धु, पाप का भांडा छावां।

जीव हम बन्धन मंगा, प्रभु कर्म का खांडम छावां।

संसार थैं सन्मार्ग दीणौ तुम ये लीला करदवा।

निर्विकारी शंभु तुम संताप जगती हरदवा।।

दैणो ह्वेजा ईश्वर, है भूमि भूम्याल

गौबन्द मुख मा तृण ल्हे, भेंट धरी अग्याला।।

अर्थात्- है दयामय दीनबन्धु ईश्वर! हम पाप के भांडे है। हम जीव कर्म के बन्धनों में फंसे है। संसार को सन्मार्ग देने के लिए तुम यह लीला रचते हो। है निर्विकारी शम्भु! तुम जगत के सन्तापहारी हो। है भूमि के भूम्याल अब प्रसन्न हो जाओ। हम गोबन्द (अति सरल, निष्कपट) होकर तृण मुख में लेकर तेरी अग्याल (पूजान्न) भेंट लेके खड़े है।

इस महाकाव्य में कवि भगवती जगदम्बा की आराधना निम्नवत् करता है-

तू ब्वै छैं हम लड़िक छवां, अंदालि लगी ग्यों तेरी।
खुचिलि पकड़ि ल्हे खुद लगीं, मंुडलि मलासी मेरी॥
अन्तर प्रेम पछयाणि की प्रकट ह्वाय भवानि।
आदिशक्ति मां भगवती, सेवा हमारी मानि॥

अर्थात् - तू मां है हम तेरे पुत्र हैं। तू हमें अपनी गोद में लेकर हमारे सिर पर अपना हाथ फेरकर अपना आशीर्वाद दे। शिव लीला के वर्णन में कवि ने शृंगार, हास्य, रौद्र, वीभत्स, आदि रसों का समुचित प्रयोग किया है।

नागरजा भाग-2 में नागरजा कृष्ण की लीला का भक्तिमय वर्णन है। इस सर्ग में कवि ने कंगालियां भाट (एक पात्र) की अवतारणा की है। जो कुंठाओं, कुवृत्तियों, व्यभिचार और स्वार्थ सिद्धि के लिए छद्मवेशी धार्मिक कर समाज को भ्रष्ट कर देता है। इस सर्ग में भगवान कृष्ण कंगाली भाट को नटखट सुंदरी बनकर ज्ञान, कला और सौन्दर्य के बल पर मोहित कर उसे जगत कल्याण का सन्देश देते है। कवि ने एक कल्पित पात्र कंठी दादा के माध्यम से जीव जगत, ईश्वर, तप-त्याग, सगुण-निर्गुण आदि दार्शनिक शंकाओं का विवेकपूर्ण ढंग से कंठी दादा के माध्यम से समाधान कराया है।

निष्कर्षतः इस काव्य की शैली अलंकृत और सरस है। इसमें ठेठ गढ़वाली शब्दों का ठाठ देखने में आता है। महाकाव्य के सभी लक्षण नागरजा में प्राप्त होते हैं। नागरजा में गीतिका, हरिगीतिका, कवित्त, सवैया, भुजंग प्रयात, उपजाति, इन्द्रबज्रा, उपेन्द्रबज्रा, ताटक, दोहा, चौपाई आदि छन्दों को प्रयुक्त किया गया है।

‘भूम्याल’ खण्डकाव्य - भूम्याल का प्रकाशन सन् 1977 में हुआ। इसमें भूमि, उलार, दन्दोल, मिलन, कर्म, विरह, औळ, ममता, विहार, परिणय, दुन्द, रोपणी, विलाप, थर्प, जलेथा और उपसंहार कुल 16 सर्ग है। काव्य का नायक लोकप्रसिद्ध उदात्त वीर भड़ जीतू बगड़वाल है तथा नायिका भरणा है। काव्य का मुख्य संदेश सामजवादी लोकतान्त्रिक व्यवस्था की प्रतिस्थापना है। इसमें अनेक मौलिक छन्दों का सृजन किया गया है।

11.3.1 गढ़वाली काव्य में काव्य तत्व और सौन्दर्यानुभूति

गढ़वाली काव्य, रसतत्व की प्रधानता के कारण अलग पहचाने जाते है। शृंगार, वीर, हास्य, करुण और अद्भुत इन रसों की गढ़वाली कविता में सर्वत्र स्थिति देखी जा सकती है। वीरगाथाएं यदि शृंगार, करुणा और वीर रस से भरी है तो लोककथाएं, अद्भुत रस और अन्य रसों की अनुगामिनी है। लोकगीतों में सर्वत्र शृंगार और प्रकृति चित्रण, करुण रस तथा सामाजिक जीवन के चित्र (बिम्ब) मिलते है। अलंकारों का प्रयोग कविवर श्रीयाल की अन्याक्षरी कविता में

अधिक दिखता है। डंडरियाल जी का 'नागराजा' भी अलंकृत काव्य है। अन्य कवियों में नरेन्द्र सिंह नेगी, को छोड़कर प्रायः काव्यालंकारों के प्रति मोह नहीं दिखाई देता है।

उन्होंने रस को ही प्रधानता दी है। भजन सिंह 'सिंह' और उनके युग के कवि सामाजिक समस्याओं के चित्रण में अधिक सफल हुए हैं। स्वातन्त्रयोत्तर प्रगतिवादी चेतना भी इन काव्यों की पृष्ठभूमि में कार्य कर रही है। देश भक्ति, वीरता, त्याग और सुधार की भावना, सिंह युग के कवियों की काव्यागत विशेषता हैं। उदाहरणार्थ -

फ्रान्स की भूमि जो खून से लाल च,
उख लिख्यों खून से नाम गढ़वाल च,
रैंद चिन्ता बड़ी तै बड़ा नाम की,
काम को फिर रैंद न ईनाम की।

भाषिक प्रयोग में नवीनता - हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी, उर्दू के शब्दों का प्रयोग भी इस कालखण्ड के कवियों ने बेहिचक किया है। उनमें गढ़वाली शब्दों के प्रयोग की अपनी बानगी तो है ही जैसे- चोली, छैला, डूडो, फाला, धौली, बसगाल, फ्योंली, जिकुड़ी, गैल्या, दुवारो, ज्यू का कालू आदि। शब्दराशि का बाहुल्य गढ़वाली कविता की अपनी अभिव्यक्ति को अपना सा बनाने में सहायक हुई है। अपने शब्दों (ब्वे की बोली) की अपनी मिठास अलग ही होती है।

प्रकृति चित्रण - गढ़वाली कविता एवं उसका काव्य साहित्य प्रकृति चित्रण के बिना अधूरा जान पड़ता है। प्रकृति चित्रण ही गढ़वाली काव्य साहित्य की एक विशिष्ट पहचान है। हिन्दी कविता में प्रकृति चित्रण, छायावादी प्रभाव की देन माना जात है। भले ही उससे पहले भी प्रकृति चित्रण को कविता के प्रमुख अंग के रूप में स्वीकारा जा चुका था। एक गढ़वाली कविता में श्रृंगार से भरे नारी के सौन्दर्य को दर्शाता काव्य को निम्न देखिए -

“अक्षत उंदकार चुलखियों मा,
रतव्योणी मा प्रेम की भारि भूखी,
जख रोज ही स्वप्न शरीर धारी,
क्वारी तरुणि स्याणी परी दिखेंदना।

काव्यालंकार- रूपक और उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग रूपाकृति वर्णन में अतिशयोक्ति की अतिरंजना, वीर भड़ों के शारीरिक सौष्ठव एवं पराक्रम वर्णन में, सुन्दरियों के देहाकर्षण में सर्वत्र दृश्यमान है। उदाहरणार्थ- महाकवि कन्हैयालाल डंडरियाल के अँज्वाल कविता संग्रह की उल्यरु जिकुड़ी कविता में आये अलंकारों के विविध बिम्ब-प्रतिबिम्ब प्रस्तुत हैं-

स्युंद सी सैण मा की कूल, स्वाति की बूंद सी ढ्वलीने
झुमकि सी तुड़तुड़ी मंगरि, मखमलि हरि सी अंगडि
फील्वर्यू हलकदी धौपंली, घुंगटी सी लौकदि कुयेड़ी

उपर्युक्त पद्य में समतल खेतों की गूल को मांग के सदृश, आंसू को स्वाति के बूंद, पानी को पतली धारा को झुमकों, हरे मैदानों को अंगड़ी, और उड़ते कोहरे की चादर को घूघंट के समान

बताकर कवि ने प्रकृति का चित्रण किया है। भूम्याल महाकाव्य में कविवर नागेन्द्र बहुगुणा 'अबोध बन्धु' की उपमाएं उनके अलंकृत कवि होने के प्रमाण है।

डांडा को कवी तरुण हाथी सी लग्यूं मस्त बाटा
हर तर्प बटि सुन्दरता हृदय मा, बौला को पाणि सी कगार कटणि
हिरणी की बच्ची सी कुंगलि चिफली भरी नि सकणि हो चौकड़ी ज्वा
म्वारी सी माधुर्य भरीं च गूंगी चखुली सी ज्वा टुपरि उड़ नि सकदी

इन पंक्तियों में रास्ते में चलते तरुण हाथी के समान जीतू के मन में, भ्रमण की सुन्दरता ऐसे समा रही है जैसे गूल के किनारों की मिट्टी काटती बारीक पानी की धारा, जीतू की गोद में समर्पित भ्रमण हिरणी की कोमल बच्ची, मधुभरी मधुमक्खी, या आकर्षक चिड़िया के समान दिखाई दे रही है। उक्त पद्य में मालोपमा अलंकार है। उमाल के कवि प्रेमलाल भट्ट ने भी कुछ ऐसी ही उपमाओं को काव्य में अपनाया है।

मिथे उख्यला की धाण सी, कवी धौलि गै कवी कूटि गै
निनि बोटल को नशा सी मैं, कखि कोणा लमड्यूं रैगयूं
कखि प्रीत कवी मिलि छई, नौनो का बांठा कि भत्ति सी,

फुंड फेकि द्यो ये समाज न, मि फुकीं चिलम को तमाखु सी

इन पंक्तियों में कवि ने सामाजिक ज्यादतियों को ओखली में कूटे जाने के समान, खाली बोटल या जले हुए तम्बाकू की चुटकी के समान निरर्थक तथा प्रीत को बच्चे के हिस्से की खीर के समान नई उपमाएं दी है।

1. नए प्रतीकों के प्रयोग- आधुनिक समय के सुप्रसिद्ध गीतकार नरेन्द्र सिंह नेगी ने अपने गीतों में प्रतीकों को चुना है। उन्होंने जिन प्रतीकों को चुना वें लोक जीवन अथवा लोकभाषा में प्रचलित है। जैसे- उकाल-उंदार गीत में उकाल जीवन संघर्ष और उंदार आसान या पतनोत्मुख जीवन के प्रतीक है। 'हौंसिया उमर' गीत में बसगल्या न्यार, पोड मा को पाणी, धार मा को बथों, झ्यूतू तेरी जमादरी में झ्यूतू शक्ति या राजसत्ता का प्रतीक, अंगूठा घिसै- अनपढ़ तथा लटुली फूली गैनि गीत में पके हुए बाल समय गुजर जाने के प्रतीक है। कवि के गीत संग्रह गाण्यूं की गंगा-स्याण्यूं का समोदर की कुछ पंक्तियां प्रस्तुत है जिनमें गढ़वाली प्रतीकों के प्रयोग की प्रवृत्ति दिखाई देती है-

खैरि का अंधेरों मा खुज्ययुं बाटु
सुख का उज्याला मा बिरड़ि गयूं
आंखा बूजिकि खुलदिन गेड़
आंखा खोलिकि अलझि गयूं
उमर भप्ये की बादल बणिगें
उड़दा बादल हैर्दि रयूं।
ज्वानि मा जर सी हैसी खते छै

उमर भर आंसू टिप्पि रयूं

रुप का फेण मा सिंवाल नि देखी

खस्स रौडू अर रडद्वदि गयूं

इन पंक्तियों में अंधेरा - परेशानी का, उजाला सुख का, गेड-मानसिक गुत्थी का, उलझना-परेशानी में पड़ना, बादल- बुढ़ापा का, हंसी- खुशी का, आंसू-दुख का, फेण- रुप की चमक तथा सिंवालु- (कायी) आकर्षण मन्द पड़ने का प्रतीक है। प्रतीक की दृष्टि से कवि गिरधारी प्रसाद 'कंकाल' एवं अबोध बन्धु बहुगुणा प्रमुख कवि है। अन्य कवियों में गोविन्द चातक व श्रीधर जमलोकी उल्लेखनीय है। कवि कंकाल के गीत संग्रह नवाण की तुम द्यबता और अमर स्वर आदि कविताएं प्रतीकात्मक है। इस काव्य में बांसुरी जीवन की आती-जाती सांसांे का प्रतीक है। भोर का तारा रतव्योण्यां जन्म का, फूलो का रस, रंग व गन्ध जीवन के विभिन्न सुख-उल्लासों की प्रतीक, जेठ की दुपहरी, जवानी अथवा जीवन की क्रियाशीलता का प्रतीक एवं खलिहान में बैलों के फेरे जन्म-मृत्यु के प्रतीक के रूप में प्रयुक्त मिलते है। उदाहरण प्रस्तुत है-

बजणी छ बांसुळी, धार मा देखा रतव्योण्यां ऐगे

भांति-भांति का रस, रंग लैगे, फूलों मा गन्ध रसधार फलू मा भरणी छ बांसुळी॥

जीवन मिट जालो स्वर यख राला, दायीं जसि फेरा रीटि की आला

बसग्याळि गंगा बणि की आख्यूं मा- तरणी छ बांसुळी

गिरधारी प्रसाद कंकाल ने घिडंवा (नर गौरैया) तथा घिडुड़ी (मादा गौरैया) को नर-नारी के प्रतीक के रूप में चुनकर गरीब पर्वतीय दम्पति की कथा-व्यथा को मनोरंजक ढंग से अभिव्यक्त किया है। कवि चक्रधर बहुगुणा ने भी प्रतीकों में अपनी बात कही है। नौबत संग्रह की दीवा कविता में दिया-चेतना का, अन्धकार चेतना का, ज्योति ज्ञान का, तेल विवेक का, घानी संघर्ष का, और बाती त्याग का प्रतीक है। सदानन्द जखमोला के रैबार काव्य में बिम्बों की भरमार है। जैसे- भींचूळों सी तिगुड़ी ढसको, प्यार पींदी धमेल, भैलो खिल्दा नितम्बों मा, चुंटी फूदा भग्यान मर्छाणी को अतुल गति से छांछ छुळदों किलोल, पुन्यो से ही दरश परशू पर्व काल सुकाळों। मंगतू काव्य में कवि डंडरियाल ने मंगतू की गरीब पारिवारिक स्थिति के अनेक बिम्ब उतारे है।

2. छन्द विधान - गढ़वाली कवियों ने परम्परागत और शास्त्रीय छन्दों में रचना की है। मंगतू में बीस मात्रा के छन्द को अपनाया गया है।- किलै मेरि ईजत गिरीं इतग रैन्दी,

म्यरा बाब जी जो हमुम छैन्दि हून्दी॥

म्यरा बाब जी तुम यखा आइ जावा।

प्वड्यूं गौरु का ल्याख मी देखि जावा॥

फयूंली की कविताओं में नये छन्दों का वैविध्य विद्यमान है- फुर-धिंडुडी आजा, पदानु का छाजा, चाड नी जो छवी लगउं, केकु तेरा नेडु अउं, इन्नि समझि तन्नि छउं, कुछ नी तेरु काजा, पदानु का छाजा।

उमाशंकर 'सतीश' के गीतों का संग्रह खुदेड़ सन् 1956 गीतात्मक शैली में लिखा गया है। इसमें एक कविता छन्द मुक्त शैली में है- है रां/दैव/कनी होली भग्यानी/मैतासु, मेरी जिकुड़ी का/टूक

होंदा/नी ओदू सरील, जगा पर/मेरी भुली/दीदी, जिया/डांडा का काफल, कन होला/ खायेणा/मेरि ब्वे होंदी/में मैतु बुलौंदि/ है रां! दैवा

निष्कर्षतः गढ़वाली कवियों में पारम्परिक छन्दों के साथ ही मनमोहक मौलिक छन्दों का भी निर्माण किया। उनकी दृष्टि मुक्त छन्द वाली कविता की ओर भी आकृष्ट हुई है। गढ़वाली लोकगीतों में समय-समय पररचे जाने वाले देश, काल और परिस्थिति की प्रेरणा से उद्भूत घटना मूलक और इतिवृत्तात्मक गीतों की संख्या बहुत है। सत्य यह है कि लोक मानस अपने आस-पास की घटनाओं के प्रति अधिक आकर्षित होता है। फलतः जो भी वैसी घटना घटी, झट से उस पर गीत बन जाया करते हैं। कुछ घटनाएँ ऐसी होती हैं जिनमें इतिहास का निर्माण होता है किन्तु कभी बहुत सामान्य घटनाएँ भी गीतों में बंध जाती हैं। लोक की दृष्टि में उनकर भी उतना ही महत्त्व होता है।

प्राचीन काल के घटनामूलक गीत अब शेष नहीं रह पाए हैं। कुछ मुगल और गोरखा आक्रमण के गीत बचे हैं। आजादी के लिए जो जन आन्दोलन हुए हैं उनकी अभिव्यक्ति गीतों में कई बार हुई है। गांधी, नेहरू, नेताजी सुभाष चन्द्र बोस, सुमन आदि के गीत एक समय बहुत लोकप्रिय रहे हैं। पंचायती राज आ जाने के बाद लोक में जो राष्ट्रीय चेतना की लहर आई वह भी अनेक गीतों में बोलती है। स्वतन्त्रता आन्दोलन के ऐतिहासिक दौर के गीतों में गांधी, नेहरू, सुभाष की प्रशंसा तथा स्वतन्त्रता के बाद की बदलती स्थितियों, जमाने के बदलते रंगों, गरीबी, बेरोजगारी, मंहगाई, अकाल जैसी दैवी आपदाओं, स्त्रियों द्वारा की जाने वाली आत्महत्याओं, अधिकारियों के हथकंडों आदि कई घटनाओं पर गढ़वाल में समय-समय पर लोक साहित्य की रचना होती रही है। इस कालखण्ड में बालगीत भी खूब रचे गये। बालगीत अब मिटते जा रहे हैं। पुरानी वीरगाथाएँ (पवाड़े) लुप्तप्राय हो रहे हैं। वर्तमान समस्याओं का चित्रण करने वाले गढ़वाली के नए लेखक पौराणिक एवं ऐतिहासिक साहित्य के लेखन में रुचि नहीं ले रहे हैं। इसका कारण उनका अपनी जड़ों से हट जाना ही माना जा सकता है। इसका प्रभाव गढ़वाली भाषा पर भी पड़ा है। उसके मूल शब्द खोते जा रहे हैं। गढ़वाली लोक साहित्य की परम्परा में भी भारी बदलाव आने लगा है। वैज्ञानिक प्रगति तथा आधुनिक ज्ञान-विज्ञान और रहन-सहन ने पुराने मिथकों को ध्वस्त कर दिया है। अतः आधुनिक पाठक और रचनाकार/लेखक प्राचीन परम्पराओं (मिथों) पर अविश्वास जतलाने लगे हैं। वे कल्पना की अपेक्षा यथार्थ को महत्त्व दे रहे हैं। यही कारण है गढ़वाली का कल्पना से अतिरंजित लोक साहित्य धीरे-धीरे समाप्त होता जा रहा है।

11.3.2 गढ़वाली लोक साहित्य के समक्ष समस्याएं

गढ़वाली में आधुनिक साहित्यिक विधाओं निबन्ध, व्यंग्य, लेख, संस्मरण तथा जीवनी आदि में भी काम प्रगति पर है। जो मुख्य रूप से पत्रिकाओं के माध्यम से प्रकाशित होते रहते हैं। इसके अलावा अनेक सम्पादित ग्रन्थ भी गढ़वाली में उपलब्ध हैं। गढ़वाली निबन्ध लेखन की शुरुआत पांचवें-छठे दशक से हुई। प्रमुख निबन्ध संग्रह इस प्रकार हैं - गढ़वाली का निबन्ध (गोपेश्वर कोठियाल), समौण (उमाशंकर सतीश), धरती का फूल, क्या गोरि क्या सौंळि (डॉ. गोविन्द चातक) आदि। अबोध बन्धु बहुगुणा की कृति 'एक कौंळि किरण' गद्य गीत, संस्मरण,

निबन्ध तथा यात्रा वृत्तान्तों का संग्रह सद्य प्रकाशित (2006 ई) हुआ है। इनके अलावा बांसुळी (भगवती प्रसाद पांथरी), मगना प्वी (बलदेव प्रसाद नौटियाल) भी गद्य गीत और हास्य रस के लेखक हैं। राम प्रसाद धिल्डियाल 'पहाड़ी' द्वारा चन्द्रसिंह गढ़वाली की जीवनी 'बड़ा भैजी' उल्लेखनीय कृति है। नए लेखकों में सर्वेश जुयाल, भगवती प्रसाद नौटियाल, देवेन्द्र प्रसाद जोशी, मदन डुकलान, लोकेश नवानी, वीरेन्द्र पंवार, विमल नेगी, नरेन्द्र सिंह नेगी, और नरेन्द्र कठैत आदि प्रमुख हैं। ये आधुनिक रचनाकार प्राचीन और नवीन दोनों काव्य परम्पराओं को लेकर चल रहे हैं। गढ़वाली में कहानियां अधिक लिखी जा रही हैं। उपन्यास एक आध दिखने में आते हैं। नाटक लिखे जा रहे हैं लेकिन सर्वाधिक लेखन कविता के क्षेत्र में हो रहा है। मुक्तक कविताएं अधिक रची जा रही हैं जो कि सामयिक समस्याओं का वर्णन करती हैं। खण्डकाव्य कम देखने में आ रहे हैं। नागरजा और भूम्याल महाकाव्यों के बाद कोई तीसरा महाकाव्य अभी रचा नहीं गया है। गढ़वाली नाटकों का मंचन बहुत कम होता है। इस कारण जनता में अपनी भाषा को बचाने और संस्कृति का संरक्षण करने की भावना नहीं पनप पा रही है। यह ज्ञातव्य है कि गढ़वाली लोक साहित्य का समारम्भ नाटकों से ही प्रारम्भ हुआ था। भवानी दत्त थपलियाल द्वारा गढ़वाली में लिखे पहले नाटक प्रहलाद की आज भी चर्चा होती है। लेकिन उसके बाद कोई ऐसा सांस्कृतिक नाटक नहीं लिखा जा सका जो नाट्यकर्मियों को तथा दर्शकों को प्रेरित कर सकता। कन्हैयालाल डंडरियाल द्वारा लिखे गये नाटक अभी तक अप्रकाशित हैं। वर्तमान गढ़वाली लोक साहित्य में नाटक, उपन्यास, निबन्ध और आत्मवृत्त आदि विधाओं का अभाव खटकता जा रहा है। नए रचनाकार इस ओर ध्यान नहीं दे रहे हैं या उनकी रुचि इन विधाओं में नहीं है। यह गढ़वाली साहित्य के भविष्य पर एक प्रश्नचिह्न है। कुछ एक गढ़वाली फिल्मों को छोड़कर फिर कोई उल्लेखनीय फिल्म नहीं बन पाई है। जो गढ़वाली साहित्यकारों/नाट्यकर्मियों को प्रेरित कर पाती।

11.3.3 वर्तमान लोक साहित्य की विधाएं

वर्तमान समय में गढ़वाली लोक साहित्य में कविता, कहानी, निबन्ध, आलोचना, रेडियो रूपक, नाटक/एकांकी, हास्य-व्यंग्य, उपन्यास और रिपोर्टाज विधाएं विकसित हो रही हैं। नए लेखकों और कवियों ने अपना शिल्प और काव्य वर्तमान हिन्दी साहित्य के अनुकरण पर बिल्कुल ताजा और तीखे स्वाद वाला अर्थात् अभिधात्मक किन्तु व्यंग्य से भरपूर (बिहारी के दोहों की तरह) लघु आकार प्रकार किन्तु तीखी मार वाला शिल्प, और वर्णन कौशल को अंगीकार कर लिया है। पुरानी परम्परा का नीतिपरक साहित्य अब बीते युग की बात हो चुका है। वर्तमान काव्य विद्या के अन्तर्गत पद्यात्मक अभिव्यक्ति की ओर नए लेखकों का अधिक रुझान है।

11.4 सारांश

गढ़वाली में आधुनिक साहित्यिक विधाओं निबन्ध, व्यंग्य, लेख, संस्मरण तथा जीवनी आदि में भी काम प्रगति पर है। जो मुख्य रूप से पत्रिकाओं के माध्यम से प्रकाशित होते रहते हैं।

इसके अलावा अनेक सम्पादित ग्रन्थ भी गढ़वाली में उपलब्ध है। गढ़वाली निबन्ध लेखन की शुरुआत पांचवें-छठे दशक से हुई। प्रमुख निबन्ध संग्रह इस प्रकार है - गढ़वाली का निबन्ध (गोपेश्वर कोठियाल), समौण (उमाशंकर सतीश), धरती का फूल, क्या गोरि क्या सौळि (डॉ. गोविन्द चातक) आदि। अबोध बन्धु बहुगुणा की कृति 'एक कौळि किरण' गद्य गीत, संस्मरण, निबन्ध तथा यात्रा वृतान्तों का संग्रह सद्य प्रकाशित (2006 ई) हुआ है। इनके अलावा बांसुळी (भगवती प्रसाद पांथरी), मगना प्वी (बलदेव प्रसाद नौटियाल) भी गद्य गीत और हास्य रस के लेखक है। राम प्रसाद घिल्डियाल 'पहाड़ी' द्वारा चन्द्रसिंह गढ़वाली की जीवनी 'बड़ा भैजी' उल्लेखनीय कृति है। नए लेखकों में सर्वेश जुयाल, भगवती प्रसाद नौटियाल, देवेन्द्र प्रसाद जोशी, मदन डुकलान, लोकेश नवानी, वीरेन्द्र पंवार, विमल नेगी, नरेन्द्र सिंह नेगी, और नरेन्द्र कठैत आदि प्रमुख है। ये आधुनिक रचनाकार प्राचीन और नवीन दोनों काव्य परम्पराओं को लेकर चल रहे हैं। गढ़वाली में कहानियां अधिक लिखी जा रही है। उपन्यास एक आध दिखने में आते हैं। नाटक लिखे जा रहे हैं लेकिन सर्वाधिक लेखन कविता के क्षेत्र में हो रहा है। मुक्तक कविताएं अधिक रची जा रही हैं जो कि सामयिक समस्याओं का वर्णन करती हैं। खण्डकाव्य कम देखने में आ रहे हैं। नागरजा और भूम्याल महाकाव्यों के बाद कोई तीसरा महाकाव्य अभी रचा नहीं गया है। गढ़वाली नाटकों का मंचन बहुत कम होता है। इस कारण जनता में अपनी भाषा को बचाने और संस्कृति का संरक्षण करने की भावना नहीं पनप पा रही है। यह ज्ञातव्य है कि गढ़वाली लोक साहित्य का समारम्भ नाटकों से ही प्रारम्भ हुआ था। भवानी दत्त थपलियाल द्वारा गढ़वाली में लिखे पहले नाटक प्रहलाद की आज भी चर्चा होती है। लेकिन उसके बाद कोई ऐसा सांस्कृतिक नाटक नहीं लिखा जा सका जो नाट्यकर्मियों को तथा दर्शकों को प्रेरित कर सकता। कन्हैयालाल डंडरियाल द्वारा लिखे गये नाटक अभी तक अप्रकाशित है। वर्तमान गढ़वाली लोक साहित्य में नाटक, उपन्यास, निबन्ध और आत्मवृत्त आदि विधाओं का अभाव खटकता जा रहा है। नए रचनाकार इस ओर ध्यान नहीं दे रहे हैं या उनकी रुचि इन विधाओं में नहीं है। यह गढ़वाली साहित्य के भविष्य पर एक प्रश्नचिह्न है। कुछ एक गढ़वाली फिल्मों को छोड़कर फिर कोई उल्लेखनीय फिल्म नहीं बन पाई है। जो गढ़वाली साहित्यकारों/नाट्यकर्मियों को प्रेरित कर पाती।

11.5 शब्दावली

मोछंग	-	छोटा वाद्य यन्त्र
माल	-	बहादुर/मल्ल
भोट	-	तिब्बत
नागरजा	-	कृष्ण
ढसाक	-	हल्का स्पर्श
ज्युंदाल	-	मन्त्र द्वारा फेंके गये चावल
जागरी	-	जागर गीतों के विशेष ज्ञ (गायक/वादक)

अंज्वाल	-	अंजुलि
खर्क	-	भैसों के रहने का स्थान
खुंदेड़	-	एक प्रकार के गीत
कळकळी	-	उत्कंठा से उत्पन्न गले पर एक प्रकार की अब्धुत अनुभूति
औजी	-	ढोल, दमामा बजाने वाले हरिजन
गदरा	-	छोटी नदी
रुणक-झुणक	-	चुपके-चुपके मन्द ध्वनि करते हुए
मुन्यासों	-	पगड़ी
कुखड़ी	-	मुर्गी
दगड्या	-	दोस्त
बोकट्या	-	बकरा

11.6 अभ्यास प्रश्न एवं उत्तर

1. निम्न प्रबन्ध किसके द्वारा लिखे गये है ?
क गढ़वाल के साहित्य संस्कृति पर स्कन्द पुराण का प्रभाव
ख नागरजा महाकाव्य
ग नाथपंथ और गढ़वाल
घ जौनसारी भाषा का विवेचनात्मक अध्ययन
2. आधुनिक गढ़वाली कथा के किन्ही तीन लेखकों के नाम लिखें ?
3. गढ़वाली नाटक विधा पर सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य किस विद्वान ने किया है ?
4. प्रथम चरण के गढ़वाली काव्यों के नाम लिखिए।
5. निम्नलिखित आधुनिक कविता संग्रहों के लेखकों के नाम बताइये।?
क गाण्यू की गंगा, स्याण्यू का समोदर,
ख मेरी अग्याल
ग हैंसदा फूल खिलदा पात
घ कुयेड़ी
6. निम्न रचनाएं किस कवि की है ?
अंज्वाल, चांठो का घ्वीड़, मंगतू,
7. गढ़वाली प्रबन्धकाव्य पर संक्षिप्त में टिप्पणी लिखिए।
8. आधुनिक समालोचना 'बीं' के लेखक का नाम बताओ।
9. नरेन्द्र सिंह नेगी के बसन्त पर लिखे हुए गढ़वाली गीत के बोल लिखें।

उत्तर

उत्तर 1

- क चन्द्रशेखर बडोला
ख कन्हैयालाल डंडरियाल
ग डॉ. विष्णुदत्त कुकरेती
घ डॉ. उमाशंकर 'सतीश'

उत्तर 2

1. नरेन्द्र कठैत
2. हिमवन्तवासी
3. अबोध बन्धु बहुगुणा

उत्तर 3 डॉ. गोविन्द चातक

उत्तर 4 प्रथम चरण के गढ़वाली काव्य निम्नलिखित है-

1. बाटा गोडाई
2. जय-विजय
3. पंछी पंचक
4. फुलकण्डी
5. मोछंग
6. प्रहलाद नाटक

उत्तर 5

- क नरेन्द्र सिंह नेगी
ख ऋषिवल्लभ कण्डवाल
ग ललित केशवान
घ कन्हैयालाल डंडरियाल

उत्तर 6 अंज्वाल, चांठो का घ्वीड, मंगतू, उक्त तीनों रचनाएं कन्हैयालाल डंडरियाल जी की हैं।

उत्तर 7 गढ़वाली प्रबन्ध काव्य

प्रबन्धकाव्य के अन्तर्गत खण्डकाव्य और महाकाव्य दोनों विधाएं आ जाती हैं। गढ़वाली में अभी तक दो ही महाकाव्य प्राप्त हुए हैं। पहला महाकाव्य अबोध बन्धु रचित भूम्याल और दूसरा कन्हैयालाल डंडरियाल रचित नागरजा है। गढ़वाली में अनेक गीत एवं संवादात्मक खण्डकाव्य भी रचे गए हैं। जिनमें जय-विजय, प्रहलाद नाटक दोनों भवानीदत्त थपलियाल रचित गीतात्मक प्रबन्ध नाट्य काव्य हैं। इनकी शैली नाटकीय होने से लोग इन्हें नाटक ही मानते हैं। बाटा गोडाई बलदेव प्रसाद दीन का गीत संवादात्मक खण्डकाव्य है। जिसे रामी नाम से जाना जाता है। भजन सिंह 'सिंह' की वीर देवकी तथा तारादत्त गैरोला कृत सदेई दोनों खण्डकाव्य हैं। कन्हैया लाल डंडरियाल का मंगतू तथा सदानन्द जखमोला का रैबार और अश्रुमाला कृतियां खण्डकाव्य के अन्तर्गत हैं।

उत्तर 8 आधुनिक समालोचना 'बी' के लेखक श्री वीरेन्द्र पंवार हैं।

उत्तर 9 नरेन्द्र सिंह नेगी का बसन्त पर आधारित गढ़वाली गीत निम्नलिखित है-

रुणुक-झुणुक ऋतु बसन्ति गीत लगादि ऐगे,
 बसंत ऐगे हमार डांडा सार्यू मा
 ठुमुक-ठुमुक गुंदक्यली खुट्यून हिटी की ऐगे,
 बसन्त ऐगे लिपीं पोतीं डिंडल्यूं मा।
 मुखड्यूं मा हैसणू च पिंगलू मौल्यार,
 गल्वड्यूं मा सुलगै गे ललंगा अंगार
 आंख्यूं मा चूमाण सुपिन्या बसन्ती
 उल्लया जिकुड्यूं मा छलकेणू प्यार
 सिणका सूत कुंगलि कंदुडि- नकुड्यूं मा पैरगे
 बसन्त ऐगे हमार गांदी चौट्यूं मा।

11.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. उत्तराखण्ड की लोक कथाएं, गोविन्द चातक, तक्षशिला प्रकाशन, दरियागंज, अंसारी रोड़, नई दिल्ली- प्रथम संस्करण 2003
2. गढ़वाली लोककथाएं, डॉ. गोविन्द चातक, प्रथम संस्करण 1996, तक्षशिला प्रकाशन, अंसारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली
3. गढ़वाली भाषा और उसका साहित्य, डॉ. हरिदत्त भट्ट 'शैलेश', प्रथम संस्करण 2007, तक्षशिला प्रकाशन, 98 ए, अंसारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली।
4. उत्तराखण्ड की लोककथाएं, डॉ. गोविन्द चातक, प्रथम संस्करण 2003, तक्षशिला प्रकाशन, 98 ए, अंसारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली।
5. गढ़वाली लोक साहित्य की प्रस्तावना, मोहनलाल बाबुलकर, प्रथम संस्करण अप्रैल 2004, भागीरथी प्रकाशन गृह, बौराड़ी, नई टिहरी।
6. गढ़वाली काव्य का उद्भव विकास एवं वैशिष्ट्य, डॉ. जगदम्बा प्रसाद कोटनाला, प्रथम संस्करण 2011, प्रकाशक- विजय जुयाल, 558/1, विजय पार्क, देहरादून।
7. गढ़वाली लोक गीत विविधा, डॉ. गोविन्द चातक, प्रथम संस्करण 2001 प्रकाशक (तेज सिंह) तक्षशिला प्रकाशन, अंसारी रोड़, दरिया गंज, नई दिल्ली।

11.8 निबंधात्मक प्रश्न

1. गढ़वाली लोक साहित्य के वर्तमान स्वरूप पर विस्तृत निबन्ध लिखिए .

इकाई – 12 पंजाबी साहित्य का इतिहास एवं परिचय

- 12.1 प्रस्तावना
- 12.2 उद्देश्य
- 12.3 पंजाबी साहित्य का काल विभाजन: विभिन्न दृष्टिकोण
- 12.4 पंजाबी साहित्य का काल विभाजन
- 12.5 आदिकाल (850 ई. से 1500 ई. तक)
 - 12.5.1 नाथ योगियों का काव्य
 - 12.5.2 बाबा फ़रीद श करगंज
 - 12.5.3 लोक साहित्य
 - 12.5.4 वार काव्य
- 12.6 मध्यकाल (1500 ई. से 1850 ई. तक)
 - 12.6.1. गुरुमत काव्य
 - 12.6.2. गुरुमत काव्य के प्रतिनिधि कवि
 - 12.6.3. श्री गुरु ग्रंथ साहिब
 - 12.6.4. सूफ़ी काव्य
 - 12.6.5. सूफ़ी काव्य के प्रतिनिधि कवि
 - 12.6.6. किस्सा काव्य
 - 12.6.7. किस्सा काव्य के प्रतिनिधि कवि
 - 12.6.8. वार काव्य
 - 12.6.9 गद्य साहित्य
- 12.7 आधुनिक काव्य (1850 ई. अब तक)
 - 12.7.1 ईसाई मिशनरियों का पंजाबी भाषा और साहित्य को योगदान
 - 12.7.2 सिंह सभा का योगदान
 - 12.7.3 पंजाबी कविता
 - 12.7.4 उपन्यास-साहित्य
 - 12.7.5 कहानी-साहित्य
 - 12.7.6 निबन्ध
 - 12.7.7 आलोचना
 - 12.7.8 नव्यतर गद्य विधाएँ

12.8 सारांश

12.9 अभ्यास प्रश्न

12.1. प्रस्तावना

इस इकाई में हम पंजाबी साहित्य पर एक दृष्टि डालते हुए इसका परिचय प्राप्त करेंगे। इसके अध्ययन से हमें यह ज्ञात होगा कि भारतीय साहित्य के इस खण्ड विशेष का क्या महत्त्व है और इसके साहित्य की कौन-कौन सी विशेषताएँ हैं जिसके कारण इसका अध्ययन उतना ही आवश्यक है जितना अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य का। आप यह भी जानेंगे कि पंजाब कितना प्राचीन है और इसके साहित्य की जड़ें कहाँ तक जा पहुँची हैं। आपको यह भी ज्ञान होगा कि पंजाबी भाषा का उद्भव कहाँ से हुआ।

प्यारे विद्यार्थियो ! यह तो आपको पता ही है कि पंजाब भारत के उत्तर पश्चिम में स्थित इलाके का नाम है। इस इलाके (क्षेत्र) में बोली जाने वाली भाषा को पंजाबी कहते हैं। पंजाबी शब्द फ़ारसी का है, जिसका अर्थ है पाँच नदियों (पंच+आब) का प्रदेश। ये पाँच नदियाँ हैं - सतलुज, व्यास, रावी, जेहलम एवं चनाव। यह नाम मुग़लों के द्वारा रखा गया था। इससे पहले इसे पंचनद, सप्तसिंधु आदि नामों से बुलाया जाता था। यह भी आपको स्पष्ट होना चाहिए कि बृहतर पंजाब का अब एक हिस्सा पाकिस्तान में चला गया है। भारत में भी इस का एक हिस्सा हिमाचल प्रदेश बन गया तो दूसरा हरियाणा। पंजाबी की तीन उप-बोलियाँ हैं - माझी (अमृतसर), दोआबी (होशियारपुर) और मलवई (पटियाला)। डॉ. उदयनारायण तिवारी के अनुसार इसका विकास 'टक्क' अपभ्रंश से हुआ है और इस पर शौरसेनी अपभ्रंश का प्रभाव है। डॉ. भोलानाथ तिवारी का मानना है कि इसका विकास पैशाची या कैकय अपभ्रंश से हुआ है। पंजाबी के प्रसिद्ध विद्वान डॉ. प्रेम प्रकाश भी कैकयी प्राकृत अपभ्रंश से इसका विकास मानते हैं। आपको यह बात भी यहीं जान लेनी चाहिये कि जिस प्रकार हिन्दी की लिपि को देवनागरी कहा जाता है, उसी प्रकार पंजाबी लिपि को 'गुरुमुखी' कहा जाता है जिसे गुरु अंगद देव ने व्यवस्थित किया। हाँ, पाकिस्तान में, पंजाबी फ़ारसी लिपि में लिखी जाती है। करनैल सिंह भिंद ने अपनी पुस्तक 'पंजाब दा लोक विरसा' में स्पष्टतः यह माना है, "पंजाबी का वैदिक संस्कृत, प्राकृतों और अपभ्रंशों से व्याकरण एवं शब्दों आदि की दृष्टि से तुलना करके यह बात स्पष्ट हो जाती है कि हिन्दी, गुजराती और मराठी आदि भाषाओं की भाँति ही पंजाबी भी हिन्दी-आर्य भाषा परिवार की आधुनिक भाषा है।"

पंजाब की समृद्ध साहित्यिक परम्परा का अवलोकन करने से पूर्व यह जान लेना भी आवश्यक है कि पुरातन खोजों के अनुसार पंजाब की सभ्यता अत्यंत प्राचीन-सिन्धु घाटी की सभ्यता तक जाती है। 1921-22 ई. में हडप्पा और मोहनजोदड़ों की खुदाई से यह बात सिद्ध हो चुकी है। हडप्पा, मोहनजोदड़ो और संघोल इसके प्रमुख केन्द्र थे। पंजाब बाह्य आक्रमणों का केन्द्र भी रहा। सिकंदर ने अरबों के सिंध के राजा दाहर पर आक्रमण करके आगामी मुसलमान

आक्रमणकारियों के लिये रास्ता खोल दिया। इसके बाद सुबकत दीन, महमूद गज़नवी, मुहम्मद गौरी के लगातार आक्रमण हुए। 1000 ई. तक पूरा पंजाब मुसलमानों के कब्जे में आ गया। यहाँ गुलाम, खिलजी, तुगलक, लोधी आदि वंशों ने राज्य किया फिर बाबर के आक्रमण से मुगलों का राज्य स्थापित हो गया। इसके बाद अंग्रेजों का आगमन हुआ। मुगलों के साथ भी पंजाब का सम्बन्ध कभी सौहार्दपूर्ण तो कभी असौहार्दपूर्ण रहा। सदा आक्रमणकारियों का सामना करने के कारण पंजाब के लोगों में अकखड़ता, लडाकूपन देखने को मिलता है।

इतनी प्राचीन सभ्यता होते हुए भी पंजाबी का साहित्य 1000 ई. के लगभग देखने को मिलता है। पंजाबी तब तक अपना आज का स्वरूप लगभग ग्रहण कर चुकी थी। इसे शुद्ध और एकरूपता देने का काम गुरु अंगद देव ने अवश्य किया।

12.2 उद्देश्य

एम0ए0एच0एल – 204 की यह बारहवीं इकाई है। इस इकाई में आप पंजाबी भाषा के साहित्य से परिचित होंगे। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- पंजाबी साहित्य के काल विभाजन से परिचित हो सकेंगे।
- पंजाबी साहित्य की विशेषताओं को समझ सकेंगे।
- पंजाबी साहित्य के प्रमुख कवियों, लेखकों से परिचित हो सकेंगे।
- पंजाबी साहित्य के योगदान को समझ सकेंगे।

12.3 पंजाबी साहित्य का काल विभाजन: विभिन्न दृष्टिकोण

अभी तक हमने पंजाब और पंजाबी भाषा के बारे में जाना है। अब पंजाबी साहित्य के विभाजन के बारे में जानेंगे। प्रायः साहित्येतिहास को लिखना कठिन रहा है। इसका मुख्य कारण इसके सम्पूर्ण साहित्य का विभाजन है। पद्य और गद्य का विभाजन तो सामान्य सा विभाजन है। मूल समस्या मानव की चित्तवृत्तियों का अंकन करने वाले साहित्य ही की है। इसका विभाजन विद्वानों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से किया है।

यह बात तो अब तक आपको स्पष्ट हो चुकी है कि पंजाबी साहित्य का इतिहास बहुत पुराना है। इसे व्यवस्थित रूप में लिखने की परम्परा का प्रारम्भ बीसवीं सदी में ही हुआ है। ये साहित्येतिहास व्यक्तिगत और संस्था के स्तर पर लिखे गये हैं। इन इतिहासों के दृष्टिकोण अलग-अलग रहै जिसके कारण अभी तक कोई संतोश जनक इतिहास प्राप्त नहीं होता। पंजाबी साहित्य का अध्ययन करने से पूर्व इसके साहित्येतिहास लेखन की परम्परा हो जानना आवश्यक है।

पंजाबी साहित्य का पहला इतिहास 'बावा बुध सिंह' द्वारा रचित तीन पुस्तकों में मिलता है। चूँकि यह पहला इतिहास है इसलिये इसमें साहित्य विभाजन की कई कमियाँ देखने

को मिलती हैं। उनके विभाजन से यह स्पष्ट नहीं होता कि उन्होंने अपने विभाजन के लिये विषय, रूप, प्रवृत्ति, धारा, राजनैतिक घटना में से किसे आधार बनाकर लिखा। सिख मज़हबी लिटरेचर, मुसलमान मज़हबी लिटरेचर, हिन्दू लिटरेचर, ईसाई लिटरेचर, दुनियाबी लिटरेचर और नया लिटरेचर उनके विभाजन का मुख्य आधार है। मज़हब के आधार पर किसी भाषा के साहित्य का विभाजन न वैज्ञानिक है और न तर्क के आधार पर ही उचित कहा जा सकता है।

डॉ. मोहन सिंह दीवाना ने साहित्येतिहास से सम्बंधित पुस्तकें लिखीं - इन पुस्तकों के काल-खण्ड विभाजन में पर्याप्त अन्तर है। उदाहरणार्थ 1. पुस्तक में पहले काल खंड को 'पूर्व नानक काल' कहा तो दूसरी पुस्तक में इसे 'नाथ योगियों का युग' कहा। 1. में 'गोरख नाथ का समय' कहा तो दूसरी पुस्तक में 'पूर्व नानक काल' या 'गोरख काल' कहा। इस प्रकार उनके इतिहास में निश्चितता नहीं है, स्थिरता नहीं है। दूसरे उन्होंने विभाजन राज घरानों को आधार बनाकर किया जैसे 'मुगल काल, रणजीत सिंह काल' - यह साहित्येतिहास का आधार नहीं हो सकते। डॉ. गोपाल सिंह दर्दी एवं प्रो. प्यारा सिंह पोगल द्वारा रचित इतिहासों पर प्रो. मोहनसिंह के इतिहास का स्पष्ट प्रभाव देखने को मिलता है।

डॉ. सुरेन्द्र सिंह कोहली ने पंजाबी साहित्य का इतिहास लिखते हुए धाराओं को आधार बनाया जैसे 'लोक गीत और साहित्यिक झुकाव, पंद्रहवीं सदी, गुरुमत का साहित्य, निर्मल साधु 'सूफी सदी' आदि। इसमें एकरसता के साथ-साथ धाराओं का उद्भव, विकास एवं समाप्ति का उल्लेख नहीं है। इसी प्रकार सुरिन्दर सिंह नरूला का 'पंजाबी साहित्य का इतिहास' भी त्रुटिरहित नहीं है। उन्होंने महत्त्व हीन को महत्त्व पूर्ण बना दिया और महत्त्व पूर्ण को महत्त्व हीन बना दिया जैसे पहले काल को 'वीर गाथा काल' कहकर उन्होंने उन 'वार काव्यों' को महत्त्व दिया जो उपलब्ध ही नहीं हुए और नाथों सिद्धों एवं बाबा फरीद की रचनाओं को निकाल ही दिया है।

ज्ञानी हीरा सिंह दर्द ने जो इतिहास 1954 ई. में लिखा उसमें इसके साहित्य के दो भाग किए - 'पुराना काल' एवं 'नया काल' और यह भी माना कि अंग्रेजों के आने पर ही पंजाबी साहित्य में नया मोड़ आता है। यह कथन दोष पूर्ण भी है और तर्कहीन भी। इसका अर्थ तो यही निकलता है कि 1850 ई. से पहले पंजाबी साहित्य में कोई परिवर्तन ही नहीं आया। वैसे भी 'पुराना काल' पंजाबी के महत्त्व पूर्ण साहित्य को कहना उचित नहीं।

डॉ. जीतसिंह सीतल ने 1973 ई. में 'पंजाबी सहित दा आलोचनात्मक इतिहास में 'गुरु नानक' को आधार बनाकर इसका विभाजन किया जैसे 'पूर्व नानक काल', 'नानक काल', 'उत्तर नानक काल'। इसमें संदेह नहीं कि गुरु नानक की वाणी प्रभावशाली और महत्त्व पूर्ण है, मगर उन्होंने न केवल बाबा फरीद का महत्त्व घटा दिया, एक रचनाकार को काल विभाजन का आधार बनाकर और 1850 ई. के बाद के साहित्य को 'परिवर्तन काल', 'आधुनिक काल' कहकर इससे मुक्ति पा ली। अतः यह मानदंड दोष पूर्ण है। यही नहीं प्रारम्भिक काल के बारे में ग़लत जानकारी भी दी गई है - जैसे इस काल में कोई प्रामाणिक रचना ही नहीं हुई, अतः पंजाबी साहित्य का कोई आदिकाल नहीं। यह बात तथ्याधारित नहीं है।

ईशर सिंह तांध ने अपने 'पंजाबी साहित दा पूरण-मूलांकन' में साहित्यिक धाराओं को आधार अवष्य बनाया। जैसे 'वीर रस काव्यधारा, श्रृंगार काव्यधारा, भक्ति काव्यधारा' आदि यह इतिहास 19वीं सदी तक होने के कारण अधूरा है।

किरपाल सिंह केसल, परमिंदर सिंह एवं गोबिन्दसिंह लांबा ने 'पंजाबी साहित दी उत्पत्ति अते विकास' नाम से जो इतिहास लिखा है, वह विद्वानों द्वारा प्रशंसित है। इन्होंने काल खंड के मुख्य तीन भाग दिये हैं - आदि काल, मध्य काल, आधुनिक काल। इन काल खंडों को फिर उपखंडों में बांटा और काव्य धाराओं एवं साहित्य रूपों के आधार पर समझने का प्रयत्न किया गया है। यह इतिहास पंजाबी साहित्य को समझने में सहायक सिद्ध हुआ है। लेकिन इस साहित्योतिहास की सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि नये संस्करण में 'आदिकाल' को 'मध्यकाल' के अन्तर्गत बिना किसी तर्कसंगत कारण के समाविष्ट कर दिया गया है।

पंजाबी साहित्य के इतिहास लेखन का कार्य भाषा विभाग, पंजाब (दो भाग), पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़ (पाँच भाग), पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला (तीन भाग), गुरु नानक देव विश्वविद्यालय, अमृतसर (तीन भाग) एवं पंजाबी अकादमी, दिल्ली (14 भाग) ने अपने-अपने धरातल पर किया है। इन संस्थागत इतिहासों में त्रुटियाँ रह गई हैं जिसके कारण ये इतिहास कहीं पूर्णता प्राप्त नहीं कर पाये। इन्हें संतोष जनक नहीं माना जा सकता।

12.4 पंजाबी साहित्य का काल विभाजन

अभी तक हमने पंजाबी साहित्येतिहास की परम्परा और दृष्टियों का संक्षेप परिचय में प्राप्त किया है। अब हम पंजाबी साहित्य का काल-विभाजन करेंगे जो अधिकांश विद्वानों द्वारा अनुमोदित है:-

आदिकाल (850 ई. से 1500 ई. तक)

- (क) नाथ योगियों का काव्य
- (ख) बाबा फ़रीद शकरगंज (सूफ़ी काव्य)
- (ग) लोक साहित्य
- (घ) वार काव्य

मध्यकाल (1500 ई. से 1850 ई. तक)

- (क) गुरमत काव्य
- (ख) गुरमत काव्य के प्रतिनिधि कवि
- (ग) श्री गुरु ग्रंथ साहिब
- (घ) सूफ़ी काव्य
- (च) सूफ़ी काव्य के प्रतिनिधि कवि
- (छ) किस्सा काव्य
- (ज) किस्सा काव्य के प्रतिनिधि कवि
- (झ) वार काव्य

(घ) गद्य साहित्य

आधुनिक काव्य (1850 ई. अब तक)

(क) ईसाई मिशनरियों का पंजाबी भाषा और साहित्य को योगदान

(ख) सिंह सभा का योगदान

(ग) पंजाबी कविता

(घ) उपन्यास-साहित्य

(च) कहानी-साहित्य

(छ) निबन्ध

(ज) आलोचना

(झ) नव्यतर गद्य विधाएँ

अब हम इस विभाजन का संक्षेप में अध्ययन करेंगे।

12.5 आदिकाल (850-1500 ई. तक)

प्यारे विद्यार्थियो ! पंजाब के आदिकालीन साहित्य का अध्ययन करने से पूर्व उस काल की पंजाब की स्थिति पर विचार करना आवश्यक है। पंजाब की भौगोलिक स्थिति ही ऐसी रही है कि सभी आक्रमणकारियों के लिये यह प्रवेश द्वार रहा। तुर्कों, गजियों के आक्रमण होते रहै। महमूद गजनबी ने 1001 ई. में हिन्दू राजा जैपाल को हराया। जैपाल के पुत्र आनन्दपाल के साथ उसका युद्ध 1008-09 ई. में हुआ। आनन्दपाल की दो तीन राजाओं की मिली-जुली सेना को उसने हरा दिया। इस प्रकार पंजाब में गजनबी राज स्थापित हो गया। गजनबी का मूल उद्देश्य भारत के मंदिरों को लूटना था। सोमनाथ मंदिर को भी उसने लूटा। 1030 ई. में उसकी मृत्यु हुई। उसका पुत्र मसऊद कमजोर सिद्ध हुआ। अतः उसका साम्राज्य केवल गजनी और पंजाब तक सीमित हो गया। इधर राजपूतों का दबदबा बढ़ा और उन्होंने पंजाब में अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया। मगर वे गजनबियों को बाहर न निकाल सके। गजनी पर जब मुइजुद्दीन मुहम्मद जिसे मुहम्मद गौरी के नाम से जाना जाता है, ने कब्जा किया तो गजनबियों को मार भगाया। पृथ्वीराज चौहान को हराने के बाद उसने कुतुबुद्दीन ऐबक को राज-प्रबंध सौंप दिया। इस प्रकार पंजाब में तुर्कों का राज्य स्थापित हो गया। इस प्रकार यहाँ गुलाम, खिलजी, तुगलक, लोधी आदि ने वर्षों राज्य किया। मुसलमानों के प्रवेश के कारण दो संस्कृतियों का मेल हो रहा था। ब्राह्मणवाद की कट्टरता और बुद्धमत की दुर्बलता ने योगियों का प्रभाव बढ़ा दिया।

12.5.1 नाथ योगियों का काव्य

इस काल को कुछ विद्वान 'पूर्व नानक काल' भी कहकर पुकारते हैं। जैसे कि पहले ही आपको बताया जा चुका है कि इस काल में पंजाबी का पहला रूप 'सिद्ध मात्रिक' लिपि में लिखा जा रहा था जो बाद में संशोधित होकर वर्तमान 'गुरुमुखी' लिपि कहलाई। 'सिद्ध मात्रिक' लिपि का

पहला प्रयोग सिद्ध नाथ योगियों ने ही किया। इनसे और बाबा फ़रीद की वाणी से पंजाबी साहित्य का प्रारम्भ माना जाता है। ये नाथ सिद्ध योगी सभी पंजाब में अपने मठ स्थापित करने वाले थे। इन योगियों ने आम जनता को विषय-विकारों से मुक्त करवाने का प्रयत्न किया। राजाओं को भी ऐय्यायशी से मुक्त करके अपना शिष्य बनाया। इनमें जलंधर नाथ, मछंदर नाथ, गोरख नाथ, चरपट नाथ, चौरंगी नाथ, रतन नाथ, भतृहरी नाथ आदि प्रमुख हैं। इन नाथों की वाणी में अपभ्रंश प्रधान पंजाबी देखने को मिलती है। इन नाथों के दोहों, पदों, शब्दों और श्लोकों में व्यंग्य प्रधान साहित्य का रूप देखने को मिलता है। डॉ. राजिन्दर सिंह सेखों ने 'पंजाबी साहित्य का नवीन इतिहास' में कहा है, "निंदा और उपदेश इस साहित्य के प्रमुख साधन हैं। इन कवियों का सारा साहित्य भैरव, रामकली और गऊड़ी राग में है।" इसमें आध्यात्म की विशेष शब्दावली का प्रयोग हुआ है।

12.5.2 बाबा फ़रीदश करगंज (सूफ़ी काव्य) (1173 ई.-1266 ई.)

इन्हें पंजाबी साहित्य का पितामह कहा जाता है। इनकी वाणी 'श्री गुरु ग्रंथ साहिब' में संकलित होने के कारण विकृत होने से बच गई है और अपने शुद्ध रूप में है। 'श्री गुरु ग्रंथ साहिब' में इनके 132 श्लोक तथा राग आसा और सूही में दो शब्द हैं। इनके 112 श्लोक ही हैं शेष 20 श्लोक , पहले, तीसरे और पाँचवे गुरु ने टिप्पणी के रूप में दिये हैं। बाबा फ़रीद पहले ऐसे पंजाबी कवि हैं जिनकी रचना शुद्ध और ठेठ पंजाबी में है और ये आज की पंजाबी के बहुत निकट है। इनकी सभी रचनाओं में सदाचार की, आध्यात्म की शिक्षा मिलती है जिसे कलात्मक, सरल एवं संयमित ढंग से अभिव्यक्त किया गया है। फरीद एक निपुण कलाकार है जिनकी वाणी की अनेक पंक्तियाँ आज मुहावरा बन कर लोगों की जुबान पर हैं। डॉ. दीवान सिंह का कहना है, "शिखर पर पहुँचा आध्यात्म और रहस्यवादी अनुभव यथार्थ से ऐसे घुल मिल गया है जैसे संसार की ठोस वस्तुओं में पवन सम्मिलित होता है।"

12.5.3 लोक साहित्य

यह बात स्मरणीय है कि प्रत्येक भाषा के साहित्य का पहला रूप लोक साहित्य ही होता है, जिसमें लोक गीत बुझारतें, कह मुकरियाँ और दो सुखने आदि होते हैं 'कह-मुकरियाँ' उन बुझारतों को कहते हैं जिनमें जवाब भी इनमें ही दिया जाता है। दो सुखने में सवाल दो भाषाओं में होता है जवाब उस शब्द द्वारा दिया जाता है जो दोनों भाषाओं में सांझा हो। ये सब रचनाएँ अमीर खुसरो के नाम के साथ जुड़ी हुई हैं। ये सब रचनाएँ लोक वाणी द्वारा पीढ़ी-दर-पीढ़ी होती हुई बदले रूप रंग में हम तक पहुँची हैं।

12.5.4 वार काव्य

वार काव्य या वारां पंजाबी में वीर काव्य को कहते हैं। जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है कि पंजाब की भौगोलिक स्थिति ही ऐसी है कि यहां के निवासियों को आदिकाल से ही बाहर के आक्रमणों का सामना करना पड़ा है। वीर काव्य वीरों को युद्ध क्षेत्र में वीरता दिखाने की प्रेरणा

हेतु रचे जाते थे। इस काल के वार-कवियों का पता नहीं। हाँ पंडित तारा सिंह नरोत्तम ने अपनी किताब 'गुरुमत निर्णय सागर' में इन वारों के नमूने प्रस्तुत किए हैं। इन्हीं के आधार पर श्री गुरु ग्रंथ साहिब में दर्ज वारों को गाने का हुक्म दिया गया।

फुटकर के अन्तर्गत 'गद्य' का प्रारम्भिक रूप आता है जिसका वर्णन 'गद्य साहित्य' में किया जायेगा।

12.6 मध्यकाल (1500 ई.-1850 ई. तक)

कुछ विद्वान इसे दो भागों में बांट कर देखते हैं - पूर्व मध्यकाल (1500-1700 ई.) और उत्तर मध्यकाल (1701-1850 ई.)। कुछ विद्वान इसे 'गुरु नानक काल' और 'उत्तर गुरु नानक काल' कहकर भी पुकारते हैं। इस काल को पंजाबी का 'स्वर्ण युग' कहकर पुकारा जाता है। इसके अध्ययन से पूर्व इसकी परिवेश गत स्थिति पर दृष्टिपात करना आवश्यक है।

गुरुनानक के जन्म के समय लोधी और पठानों का राज्य था। यह राज्य भ्रष्टाचार, बईमानी और बेइन्साफी से भरा हुआ था। सामाजिक दषा भी ऊँच-नीच, जाति-भेद, बहमों-भ्रमों, झूठे रस्म, रिवाजों का षिकार थी। बाबर ने इब्राहिम लोधी को हराकर अपना राज्य कायम किया। मुगलों के भारत में कब्जा करने पर कई सदियों के बाद लोगों को षान्ति प्राप्त हुई। हिन्दुओं पर अत्याचार कम हुए। बाबर नानक का समकालीन था तो औरंगजेब दसवें गुरु गोबिन्दसिंह का। अकबर को छोड़कर सभी राजाओं की गुरुओं से ठनी रही है। जहांगीर, शाह जहां, औरंगजेब सभी ने गुरुओं को प्रताड़ना दी। यह सब होते हुए भी मुगलों के दौर में कोई बड़ी बगावत नहीं हुई, न ही कोई बाहर से आक्रमण हुआ। औरंगजेब का राज्य अवष्य विद्रोह का अखाड़ा बना। गुरु तेगबहादुर की श हीदी के बाद 1699 ई. में गुरु गोबिन्द सिंह ने 'खालसा पंथ' की नींव रखी ताकि धर्म की रक्षा की जा सके। 1707 ई. में औरंगजेब की मृत्यु के बाद उनका बेटा मुअज़म, जो बहादुरशाह कहलाया, गद्दी पर बैठा। इधर बंदा बहादुर ने पंजाब में मुगलों की नाक में दम कर दिया। 1716 ई. में बंदा बहादुर की श हीदी के बाद 30 वर्ष तक सिखों पर अकथनीय, असहनीय अत्याचार हुए। 1739 ई. में इरान के राजा नादिरशाह ने आक्रमण करके मुहम्मदशाह रंगीले की कमर तोड़ दी। 1757 ई. को अहमदशाह अब्दाली ने केन्द्रिय शक्ति यानी मुगल शक्ति को कमजोर कर दिया। सिखों का मूलनाश करने के प्रयत्न हुए। सिखों ने हौसला करके 12 संगठन बना लिये जिन्हें 'बारह मिसले' कहकर पुकारा जाता है। इन्हीं मिसलों में 'षूकरचकिया' मिसल के सरदार रणजीत सिंह ने पहले 1801 ई. में लाहौर पर कब्जा कर लिया और फिर धीरे-धीरे 1839 ई. तक पूरे पंजाब तक अपनी हदों का विस्तार कर लिया। लेकिन आपसी झगड़ों और रणजीत सिंह की मौत के बाद सिख शक्ति समाप्त हो गई और 1849 ई. तक पंजाब पर अंग्रेजों का कब्जा हो गया।

12.6.1. गुरुमत काव्य

लौकिक एवं अलौकिक संसार से सम्बंधित गुरुओं और 'श्री गुरु ग्रंथ साहिब' में दर्ज वाणीकारों की विचारधारा को समूचे रूप में गुरुमत काव्य कहा जाता है। इस काल में रचे गये सम्पूर्ण काव्य में सर्वश्रेष्ठ काव्य गुरुओं का ही है जिसे 'आदि ग्रंथ' में संकलित किया गया है। डॉ. परमिंदर सिंह का इस सम्बंध में कहना है, 'पंजाबी साहित्य में गुरुमत काव्य धारा सबसे शक्तिशाली कही जा सकती है क्योंकि इस काल की अन्य सभी साहित्यिक प्राप्ति से, जहाँ आकार में यह सबसे अधिक है, वहाँ लोक भावनाओं की भी यह सबसे अधिक व्याख्या करती है। सभी गुरुओं ने समाज को आध्यात्मिक भाईचारा, सदाचार और सभ्याचार आदि भिन्न-भिन्न पक्षों से विकसित करने के लिये साहित्य को एक साधन के रूप में जीवन के ठोस विकास का साधन सिद्ध किया।' गुरु नानक, गुरु अंगद देव, गुरु अमरदास, गुरु रामदास, गुरु अर्जुन देव, गुरु तेग बहादुर एवं गुरु गोबिन्द सिंह की वाणी आध्यात्मिक और कलात्मक दृष्टि से निःसंदेह उदात्त जीवन दृष्टि की परिचायक है। ये सारी वाणी संगीत बद्ध है।

12.6.2. गुरुमत काव्य के प्रतिनिधि कवि

प्रिय विद्यार्थियो ! अभी तक हमने गुरुमत काव्य का संक्षिप्त परिचय प्राप्त किया है। अब हम इसके प्रमुख काव्यों का परिचय प्राप्त करेंगे। इस अध्ययन को करते समय सदैव स्मरण रखें कि पंजाब की संस्कृति का यह मूल आधार है और सभी कवियों का वर्णन यहाँ नहीं दिया जा सकता है।

12.6.2.1. गुरु नानक (1469 - 1539 ई.)

गुरु नानक पंजाब के ही नहीं समूचे भारत में समादृत हैं। उनकी प्रामाणिक वाणी 'श्री गुरु ग्रंथ साहिब' में संकलित है। 2949 बंदों में समाहित उनकी वाणी 19 रागों में निबद्ध है। श्री गुरु ग्रंथ साहिब में संकलित उनकी वाणी गुरु अर्जुन देव को छोड़कर सबसे अधिक है। उनकी वाणी के बारे में डॉ. परमिंदर सिंह का कहना है - "इस अमर साहित्य की सबसे बड़ी खूबी यह है कि गहरे से गहरे, गम्भीर से गम्भीर और सूक्ष्म आध्यात्मिक विषयों को लोक अनुभव के अधिक से अधिक निकट रखा और उसे लोक भाषा के माध्यम से रूपायित किया।" पंजाबी साहित्य के नये युग का प्रारम्भ करने वाले, साहित्य को लोक-जीवन से जोड़ने की नयी परम्परा डालने वाले गुरु नानक 24 वर्ष तक देश-देषाटन करते रहे। उनकी वाणी में जपुजी साहब, तुखारी राग का बारहमासा, बाबर वाणी प्रसिद्ध है।

12.6.2.2. गुरु अर्जुन देव (1563 - 1606 ई.)

गुरु अर्जुन देव की पंजाब को सबसे बड़ी देन तो 'श्री गुरु ग्रंथ साहिब' का सम्पादन है जिसका परिचय आपको पहले दिया जा चुका है। इस ग्रंथ में उनकी सम्पूर्ण वाणी संकलित है। 'सुखमनी', 'बारमहासा', 'फुहने' और 6 वारें उनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। आप की भाषा शुद्ध एवं ठेठ पंजाबी है। प्राकृत, संस्कृत एवं ब्रज भाषा में भी आपने रचनाएँ की हैं। दार्शनिक चिन्तन

आप से पहले के गुरुओं से अलग नहीं, मगर सभी रचनाओं पर आपके व्यक्तित्व की छाप है। काव्य की मिठास, प्रवाह और सुन्दर शब्द- योजना आपकी रचनाओं का श्रेष्ठ गुण है। 'सुखमनी' पंजाबी प्रबंध-काव्य का उत्कृष्ट नमूना है।

12.6.2.3. गुरु तेग बहादुर (1666 - 1708 ई.)

गुरु तेग बहादुर की वाणी परिमाण में कम है केवल 59 पद और 57 श्लोक। इनकी वाणी को गुरु गोबिन्द सिंह ने श्री गुरु ग्रंथ साहब में दर्ज करवाया। गुरु जी की वाणी में संसार की नष्वरता और वैराग्य का स्वर प्रमुख है। संसार, मानवीय सम्बंध सब अस्थिर हैं। मनुष्य स्वार्थ के चलते सबसे सम्बंध बनाता और तोड़ता है - उनकी सम्पूर्ण वाणी इस बात को दोहराती है।

12.6.32.4. गुरु गोबिन्द सिंह (1666 -1707 ई.)

गुरु गोबिन्द सिंह की सम्पूर्ण वाणी 'दश म ग्रंथ' में संकलित है। 'श्री गुरु ग्रन्थ साहिब' में एक दोहा ही है। आपकी वाणी 'चंडी दी वार' एवं दो शब्दों को छोड़ कर, ब्रज भाषा में है। 'चण्डी दी वार' लिखने का उद्देश्य जन-साधारण में आत्मिक बल के साथ-साथ वीरता की भावना भर कर उन्हें अत्याचार और अन्याय के विरुद्ध खड़े होने के लिये प्रेरित करना है। उनकी यह रचना विद्वानों के अनुसार पंजाबी की पहली प्रामाणिक वीर रस की रचना है। 'मित्तर प्यारे नू' उनकी पंजाबी की उत्कृष्ट रचना है।

12.6.2.5. भाई गुरदास (1543 - 1637 ई.)

भाई गुरदास को डॉ. परमिंदर सिंह ने 'मध्यकाल के सारे कवियों में शिरोमणि' कहकर पुकारा है। आपने 39 बरों पंजाबी में और 600 से ऊपर कवित्त एवं सवैये ब्रज भाषा में रचे। 'गुरु अर्जुन देव' ने इनकी रचना को 'श्री गुरु ग्रंथ साहब की कुंजी' कहकर सम्मान दिया था। पंजाबी में सबसे अधिक वारे लिखने का श्रेय भी इन्हें ही प्राप्त है। आपकी रचनाओं में गुरुवाणी की विस्तार पूर्वक व्याख्या और गुरमत की विचारधारा को तर्क एवं उदाहरणों से स्पष्ट किया।

12.6.3. श्री गुरु ग्रंथ साहिब

यहाँ इस बात का उल्लेख अत्यंत महत्त्व पूर्ण है कि इन समस्त गुरुओं की वाणी बिना किसी मिलावट के ठीक उसी रूप में हम तक पहुँची है जिस रूप में उन्होंने रची थी। इसके शुद्ध रूप का सारा श्रेय 'श्री गुरु ग्रंथ साहिब' को है जिसे गुरु अर्जुन देव ने 1604 में अनथक मेहनत से तैयार किया और जो आज भी ज्यों का त्यों सिखों का एकमात्र आधार ग्रंथ है। विश्व के सभी धर्मों में संभवतः यह एक अकेला ग्रंथ है जो षुद्धता की दृष्टि से प्रामाणिक है। श्री गुरु ग्रंथ साहिब में दर्ज वाणी बहु-भावी और व्यापक है। इसलिये इसे सम्पूर्ण भारत की सांझी विरासत स्वीकार किया जाता है। गुरु अर्जुन देव ने 6 गुरुओं के अतिरिक्त उन भक्तों, संतों, सूफ़ी कवि षेख फ़रीद को भी श मिल किया जिनका विचार गुरमत के अनुरूप है। इस ग्रंथ में भले ही भाई गुरदास और गुरु गोबिन्द सिंह श मिल नहीं लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि ये गुरमत विचार धारा से अलग हैं। दोनों गुरमत विचार धारा का हिस्सा है। गुरु गोबिन्द सिंह की अधिकांश रचनाएँ ब्रज भाषा

में है - 'चण्डी दी वार' को छोड़कर। उनकी वाणी 'दश म ग्रंथ' में संकलित है। श्री गुरु ग्रंथ साहिब के गुरु नानक, गुरु अंगद देव, गुरु अमरदास, गुरु रामदास, गुरु अर्जुन देव, गुरु तेगबहादुर के अतिरिक्त जिन भक्तों की वाणी संकलित है वे हैं - कबीर, नामदेव, रविदास, त्रिलोचन, फ़रीद, बेनी, धन्ना और जयदेव। उल्लेखनीय है कि इस ग्रंथ में 11 भाटों की रचनाएँ भी संकलित हैं। सामान्यतः भाट वो कवि होते हैं जो राजाओं और कुलीन वर्ग के लोगों की प्रशंसा में 'वारें' रचते थे या उन के जीवन वृत्तान्त सुनाते थे। इनकी वाणी में सिख संस्था के महत्त्व का वर्णन है। सम्पूर्ण श्री गुरु ग्रंथ साहब को संगीत की अलग-अलग राग-रागनियों में गाने का आदेश है। गुरुद्वारों में जो गायन होता है वह इसी गुरु आज्ञा का पालन है।

12.6.4. सूफी काव्य

इस्लाम के भारत में प्रवेश के साथ ही सूफी विचारधारा का प्रवेश हुआ। पंजाब के सामाजिक जीवन, संस्कृति, भाषा, लोकछंद, अलंकार, प्रतीक बिम्ब पंजाबी सूफी कविता का शृंगार बने। यह कविता इस्लाम की कट्टर परिधि से बाहर आकर पंजाबियों के जीवन का अंग बन गई। 'सूफी' शब्द 'अरबी' शब्द 'सूफ' से बना है जिसका अर्थ है 'ऊन'। हजरत मुहम्मद के समकालीन सूफी ऊन के कपड़े पहनते थे। जो लोग सांसारिक मोह-माया को छोड़कर आध्यात्मिक रास्ते पर चल पड़ते थे वो काले कपड़े पहनकर फकीर बन जाते थे। वे ही सूफी थे।

पंजाबी सूफी धारा बारहवीं सदी से आरम्भ होकर सत्रहवीं सदी में अपने शिखर पर पहुँचती है और उन्नीसवीं सदी के पहले मध्य में अपने पतन को प्राप्त होती है। इस अवधि में इश्क, रांझा और विरह इनके स्थाई आधार रहे। शेख फ़रीद को पहला पंजाबी कवि और पहला सूफी कवि माना जाता है। इसने अपने 'शब्दों और श्लोकों' के माध्यम से परमात्मा और मौत से इश्क को जोड़ा। शाह हुसैन ने 'काफी' और सुलतान बाहू ने 'सिहरफी' के माध्यम से विरहा और बौद्धिकता से इसमें रंग भरा। बुल्लेशाह का काव्य तो पंजाबी काव्य की सीमाओं का लांघ कर देश-व्यापी हो गया है। उसे प्रायः सभी उच्चकोटी के गायकों ने गाया है। बुल्लेशाह में मस्तमौलापन भी है, कबीर सी अक्खडा भी, पाखंड विरोध भी, इश्क में एकनिष्ठता और तल्लीनता भी। अली हैदर, सैय्यद गुलाम कादर शाह, शाह हबीब, फर्द फकीर, मियाँ जान मुहम्मद, गुलाम जीलानी रोहतकी, मौलाना अब्दुल रहिमन खुलदी, हाश म, कादर बख्श बेदिल उर्फ बेदिल फ़कीर, हिदायतुल्ला, गुलाम फरीद ने भी अपने सूफी काव्य से पंजाबी कविता को आगे बढ़ाया। सूफी काव्य जहाँ वेदांत और गुरुमत विचारधारा से प्रभावित हुआ वहाँ गुरुमत को अपनी उपलब्धियों से प्रभावित किया।

12.6.5. सूफी काव्य धारा के प्रतिनिधि कवि

सूफी काव्य का परिचय प्राप्त कर लेने के बाद इस लम्बी परम्परा के कुछ प्रतिनिधि कवियों का परिचय प्राप्त कर लेना आवश्यक होगा। यहाँ यह स्मरण रखना आवश्यक होगा कि पंजाबी में सूफी काव्य का प्रारम्भ फ़रीद शकरगंज से माना जाता है - जो मध्यकाल से पहले हुए और जिनका वर्णन हम पहले कर चुके हैं।

12.6.5.1. शाह हुसैन (1539 - 1593 ई.)

शाह हुसैन की 163 काफ़ियाँ रागों में हैं। डॉ. सुरिन्दर सिंह कोहली शाहहुसैन को 'नई पंजाबी में लिखने वाला पहला सूफ़ी' मानते हैं। इनकी काफ़ियों में सूफ़ी काव्य के सभी प्रमुख लक्षण देखने को मिलते हैं। अपने विचारों और सिद्धान्तों में वह पूर्णतया भारतीय हैं। उसके सूफ़ी रहस्यवाद में भारतीय और ईरानी विचारों का सुन्दर मिश्रण है। सदाचार और दार्शनिक दृष्टि से आपकी कविता महत्त्वपूर्ण है। शाह हुसैन को विरह का कवि भी कहा जाता है। उसने ईश्वरीय प्रेम, जिसे 'इश्क हकीकी' कहा जाता है, अत्यंत वेगपूर्ण भावों में व्यक्त किया है। साह हुसैन के काव्य से सूफ़ी विचारधारा अपने एक ऐतिहासिक विकास की नई मंज़िल तक पहुँच जाती है।

19.6.5.2. बुल्लेशाह (1680 - 1758 ई.)

बुल्लेशाह वारिसशाह की भांति पंजाब और समय की सीमा पार करके आज भी सर्वाधिक लोकप्रिय कवियों में एक है। इसका वास्तविक नाम अब्दुल्ला था। इनायत शाह का भरी जवानी में शिष्य बनकर बुल्लेशाह ने सूफ़ी मत का प्रचार किया। अपने 'मुश' (उस्ताद) की मृत्यु के बाद तीस वर्ष तक बुल्लेशाह ने उनकी गद्दी पर बैठ कर लोगों को सूफ़ी मत की ओर प्रेरित किया। बुल्लेशाह ने सूफ़ी काव्य को यौवन तक पहुँचा दिया। डॉ. असलम राना ने बुल्लेशाह को 'पंजाबी का बेबाक शायर' कहा है क्योंकि बुल्लेशाह जितना स्पष्टवादी सूफ़ी था, वैसा कोई नहीं था। वह बेझिझक होकर पांखड़ियों को खरी-खरी सुना देता था - जैसे कबीरा दोनों ही हृदय से निष्कल थे। बुल्लेशाह के काव्य में अद्वैत विचारधारा स्पष्ट रूप से प्रकट होती है। इसी को सूफ़ी शब्दावली में 'वहदतुल वुजूद' कहा जाता है। इस अवस्था में किसी वस्तु में कोई भेद नहीं रह जाता। सब ईश्वरमयी हो जाता है। बुल्लेशाह की कविता का यही मूलाधार है। बुल्लेशाह ने 158 काफ़ियाँ रचि जो सर्वाधिक प्रचलित हैं। उन्होंने 48 दोहरे, 40 गंडा, 3 सिंहफ़ियाँ, 1 अठवारा तथा 1 बारमासा रचीं। छंद की दृष्टि से इन्हें काफी, बैत, दोहरे, गीत आदि में बांटा जा सकता है। इन सब रचनाओं में सूफ़ी रहस्यवादी अनुभव को बुल्लेशाह ने अत्यंत सुघड़ शब्दावली में अभिव्यक्त किया है। बुल्लेशाह ने अपने सभी बिंब, अपने अलंकार, प्रतीक साधारण जन-जीवन एवं प्रकृति से लेकर अपने काव्य को लोक-काव्य के निकट पहुँचा दिया। इसलिये वह सर्वाधिक लोकप्रिय है।

12.6.5.3. वजीद (1550-1660 ई.)

डॉ. मोहन सिंह दीवाना ने मुगलकाल के उत्तरार्द्ध के तीन प्रसिद्ध सूफ़ी कवियों में इन्हें एक माना है। वजीद की पंजाबी में रचनाओं की संख्या 77 मानी जाती है। वजीद पहला पंजाबी कवि है जिसके काव्य में नाटकीय, व्यंग्य और हास्य मिलता है। वजीद सामाजिक असमानता और दरिद्रता के लिये परमात्मा को भी ताने देने की हिम्मत करता है। वजीद की सभी रचनाएँ 'बाबा वजीद' के नाम से प्रकाशित हो चुकी हैं। वजीद ने अन्य सूफ़ियों से अलग समाज सुधार का मार्ग अपनाया। संभवतः इसलिये उसकी वाणी में कटाक्ष और व्यंग्य देखने को मिलता है। इस दृष्टि से वह सूफ़ी होकर भी यथार्थवादी है।

12.6.6. किस्सा काव्यधारा

पंजाब में किस्सा काव्य का प्रारम्भ मध्यकाल में माना जाता है। विद्वानों का मानना है कि ये फ़ारसी की मसनवी के आधार पर रचे गये। केवल स्थानीय रंग और ग्रामीण रूप पंजाबी का है। शेष ढांचा फ़ारसी मसनवी का है। फ़ारसी में लम्बी कहानी को मसनवी कहा जाता है। पंजाबी में किस्सा उस छंदबद्ध वृत्तान्त रचना को कहा जाता है जिसमें कथानक का सम्बंध प्रेम, रोमांस आदि के साथ हो। अब ये नाम प्रेम, रोमांस के साथ रूढ़ हो गया है। पंजाब के प्रसिद्ध किस्साकारों में दमोदर (किस्सा सस्सी पुन्नू, युसुफ जुलैखा) अहमद गुजर (बैत छंद में हीर रांझा का किस्सा) मुकबल (किस्सा हीर), वारिसशाह (किस्सा हीर रांझा), हामद (किस्सा हीर रांझा), हाश म (किस्सा सस्सी पुन्नू), इमाम बख़्श (शाह वहराम), कादर यार (पूरण भगत, सोहणी महिवाल) आदि का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इनमें वारिसशाह की हीर -जो कि पंजाबी किस्सा काव्य का प्रमुख आधार है -अपनी लोकप्रियता में अद्वितीय है।

12.6.7. किस्सा काव्य के प्रतिनिधि कवि

प्यारे विद्यार्थियो ! यह बात स्मरण रखनी चाहिये कि आध्यात्मिक काव्य के बाद मध्यकाल की सबसे अधिक प्रतिनिधि धारा किस्सा काव्य ही है। इनके प्रमुख कवियों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है।

12.6.7.1. दमोदर

दमोदर से पंजाबी किस्सा काव्य का प्रारम्भ होता है। दमोदर के जन्म मृत्यु का इतिहास प्रामाणिक नहीं है। इतना ही पता चलता है कि वह बहलोल लोधी और शेरशाह सूरी के समय युवा और अकबर के समय बूढ़ा था। दमोदर का एक ही किस्सा 'हीर रांझा' मिलता है जो 'दवइया छंद में है, जिसकी 28 मात्राएँ होती हैं। उल्लेखनीय है कि पंजाबी में 'हीर रांझे' का किस्सा लिखने वाले लगभग दो सौ कवि हैं। अतः कह सकते हैं कि यह विषय कवियों का प्रिय विषय है। दमोदर का 'किस्सा हीर रांझा' कई विद्वानों ने सम्पादित करवाया है और इसके 950 से 990 तक बंद हैं। इसकी बोली लहंदी पंजाबी या झांगी है। इसमें फ़ारसी के तत्सम शब्द देखने को मिलते हैं। यह किस्सा सवाल-जवाब या नाटकीय ढंग से लिखा गया है। कवि ने कई स्थानों पर अपना बयान भी दर्ज किया है। दमोदर के काव्य में संयम, संक्षेप और संकोच है। कला की दृष्टि से यह किस्सा वारिसशाह से कम नहीं। इसमें श्रृंगार, वीर एवं करूणा रस की प्रधानता है। अलंकारों का प्रयोग भी कवि के काव्य-कौशल का परिचय देता है। पंजाबी में इस किस्से का विशेष महत्त्व है।

12.6.7.2. पीलू

पीलू अकबर और जहांगीर (1556 से 1627 ई.) के समय था। 'मिरजा साहिबा' लिखने वाला वह पहला कवि है। उसकी रचना लोगों की जुबान से होती हुई प्रकाशित हुई। पीलू का यह किस्सा अधूरे रूप में प्राप्त है जिसकी कड़ी भी कई बार टूटती है। पीलू का यह किस्सा लोगों को इतना प्रिय है कि इसका आधा हिस्सा तो सभी को याद है और गायक जब इसे गाते हैं

तो दिलों को हिला कर रख देते हैं। पंजाबी के प्रारम्भिक आलोचक बावा बुध सिंह ने पीलू के किस्से को 'जटका' (सतही) कहा है जबकि मौला बख्श कुप्ता ने इस किस्से में सोज़, प्रतीक, संकेत और प्रवाह पाया है। इसमें संदेह नहीं कि 'मिरजा साहिबा' हीर के बाद पंजाबी लोगों में अत्यंत लोकप्रिय है।

12.6.7.3. वारिस शाह

वारिस शाह पंजाब के उन सौभाग्यशाली कवियों में से एक है जो पंजाब की सीमा, काल की सीमा को पार करके पूरे भारत के प्रिय हुए और आज भी हैं। वारिसशाह की 'हीर' की लोकप्रियता का अब तक कोई मुकाबला नहीं कर सका। वारिस ने 'हीर' का किस्सा घर-घर पहुँचा दिया। वारिसशाह के जन्म एवं मृत्यु के बारे में विवाद रहा है। मगर यह माना जाता है कि उसका जन्म 1720 ई. में और मृत्यु 1792 ई. में हुई तथा उसने अपना यह किस्सा 1766-67 ई. में पूर्ण किया। वारिसशाह ने अपना यह 'किस्सा हीर वारिस' बैत छंद में लिखा और इस छंद को अपनी श्रेष्ठता तक पहुँचाया। इस किस्से में उसने उस समय की सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक स्थितियों का बड़ी लगन से वर्णन किया है। उस समय के समाज के रीति, रिवाज, विवाह आदि का बड़ा सजीव वर्णन मिलता है। वह इश्क मजाज़ी की बातशुरू करके उसे 'इश्क हकीकी' की ओर मोड़ देता है। ऐसा करके भी वह यथार्थ पर परदा नहीं डालता। वारिस की सबसे बड़ी विशेषता उसकी प्रभावशाली भाषा है। अनुभव की विशालता और वर्णन की अद्भुत क्षमता उसे श्रेष्ठता प्रदान करती है। केन्द्रीय और पश्चिमी पंजाबी का सुंदर सम्मिश्रण उसकी भाषा में है। फारसी शब्दावली का उसने खुलकर प्रयोग किया है। विश्वकोषीय ज्ञान उसकी एक और बड़ी खूबी है। जीवन की हर स्थिति के बारे में वारिस का ज्ञान हैरान करने वाला है। दृश्य का चित्रण करने और नखशिख वर्णन में वह बेजोड़ है। शिप्ले ने अपनी पुस्तक 'एनसाइक्लोपीडिया ऑफ लिटरेचर' में वारिसशाह को पंजाब का सबसे बड़ा कवि और 'हीर' को उसकी सर्वश्रेष्ठ रचना कहा है।

12.6.7.4 हाश म (1752 - 1829 ई.)

हाश म महाराजा रणजीत के समय का सबसे श्रेष्ठ किस्सा कवि है। इसके किस्से 'सोहणी महिवाल', 'हीर रांझे की बिरती', 'सस्सी पुन्नू', 'श्री-फरहाद की बारता' आदि हैं जिनमें उस युग के सरोकारों का भी वर्णन है। इनकी प्रसिद्ध रचना 'किस्सा सस्सी पुन्नू' है। हाश म से पहले लिखे इस किस्से को वो प्रसिद्धि नहीं मिली जो हाश म को प्राप्त हुई। इस किस्से में 126 छंद हैं। दवइया छंद में रचित यह किस्सा नाटकीय शैली में लिखा होने के कारण कथावस्तु की कमी अनुभव नहीं होने देता। 'सोहणी महिवाल' में आलोचक चमक और रस नहीं पाते जो 'सस्सी पुन्नू' में है। हाँ 'सोहणी' के विरह का वर्णन प्रभावशाली है। किस्सों के अतिरिक्त हाश म ने फुटकर काव्य भी लिखा।

12.6.7.5. कादरयार (1802 - 1892 ई.)

कादरयार का वास्तविक नाम कादर बख्श था। उसकी कई रचनाएँ हैं - पूरण भगत, किस्सा सोहणी महिवाल, रोजानामा, वार रानी कोकिलां, वार हरी सिंह नलूआ आदि। जैसे

वारिस का शाह कार 'हीर' है, हाश म का 'ससी हाश म' है, ठीक उसी प्रकार कादरयार की रचना 'पूरण भगत' है जिसे उन्होंने बैत छंद में लिखा। यह किस्सा उसने अपने समकालीन जाटों को ऊँचा उठाने के लिये लिखा। इसमें उसने मां की ममता के गौरव और महिमा को वर्णित किया है। इस रचना से प्रभावित होकर ही शिवकुमार बटालवी ने 'लूणा' लिखी। इस रचना में फ्रायड के 'इडिपस कम्प्लेक्स' के रेषे भी दृष्टिगोचर होते हैं। 'सोहणी महिवाल' में कादरयार की काव्य कला और निखरी है। इसमें विरह का वर्णन, भाषा की मिठास और पैली की रवानगी स्पष्ट दिखाई पड़ती है।

12.6.7.6. फ़ज़लशाह (1828 - 1890 ई.)

फ़ज़लशाह अपने समय के एक श्रेष्ठ किस्सा काव्यकार थे। अरबी, फारसी का गहरा ज्ञान उनकी रचनाओं में देखने को मिलता है। इनके पाँच किस्सा काव्य मिलते हैं - सोहणी महिवाल (1846 ई.), सस्सी पुन्नू (1862 ई.), हीर रांझा (1866 ई.), लैला मजनू (1870 ई.) और युसुफ जुलैखा (1870 ई.)। सोहणी महिवाल इन्होंने बीस वर्ष की आयु में रचा और यही उनकी सर्वश्रेष्ठ रचना मानी जाती है। इसमें कवि ने कथानकगत कई नये तथ्य शामिल किए हैं। इसको लिखने की प्रेरणा भी इसे निजी वियोग की पीड़ा से मिली। शब्दों का जादूगर होने के कारण इसने अपनी कविता की पहचान बनाई। बैत छंद का सुन्दर प्रयोग और शब्दालंकारों की बहुतायत इनके काव्य की विशेषता है। इसने अपने सभी किस्सों में इश्क -ए-मजाज़ी से इश्क -ए-हकीकी की यात्रा करवाई है। लेकिन जहाँ भी इसे अवसर मिला है इसने इस्लाम धर्म की प्रशंसा करके इसका प्रचार किया और यूँ धर्म निरपेक्षा की प्रवृत्ति को धक्का पहुँचाया।

12.6.8 वार काव्यधारा

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि वार काव्यों का प्रारम्भ आदिकाल में ही हो गया था। मगर मध्यकाल तक आते-आते इसके कई रूप हो गये। सांसारिक वारों के साथ आध्यात्मिक वारों लोक वारों, ऐतिहासिक वारों, मिथ वारों, नवीन वारों आदि लिखी जाने लगीं। श्री गुरु ग्रंथ साहिब में 22 वारें हैं। 39 वारें भाई गुरदास ने और 2 वारें दूसरे गुरदास के नाम पर प्रचलित हैं। इस युग के प्रमुख वीर रस के कवि हैं अब्दुला, पीर मुहम्मद हाफिज़ बरखुरदार और गुरु गोबिन्दसिंह। गुरु गोबिन्दसिंह की 'चण्डी दी वार' से वीर काव्य षिखर पर पहुँचता है। हाफित बदखुरदार द्वारा रचित जंगनामा भी इसी काल में रचा गया। वीर काव्य पंजाबी साहित्य की अपनी विशेषता है। पंजाब की भौगोलिक स्थिति, इसकी प्राचीन विरासत, परम्परा, इतिहास, पंजाबी चरित्र- सब मिलकर इस धारा को जीवित रखे हुए हैं।

12.6.9 गद्य साहित्य

कुछ विद्वानों का मानना है कि पंजाब में गद्य लेखन आदिकाल में ही शुरू हो गया था लेकिन कुछ उदाहरणों को छोड़ कर कोई रचना नहीं मिलती। अतः मध्यकाल में यह गद्य न केवल आकार, बल्कि विषय, रूप और प्रकारों की भिन्नता के कारण अपना महत्त्व रखता है। जन्म साखियाँ, टीका, परमार्थ, वचन, महात्म, गोष्ठों और हुक्मनामों इस काल की गद्य के प्रमुख रूप हैं।

ये गद्य परम्परा मूलक हैं। इसमें दार्शनिक, वृत्तान्त, वर्णन, व्याख्या या वार्तालाप आदि रूपों में हैं। इस युग में 'पुरातन जन्मसारणी', 'गोष्टो' गुरु नानक की, परमारथ, हाज़रनामा, प्रमुख हैं। प्रधान गद्य रूप जन्म साखियों का है। इस काल में फारसी, संस्कृत से अनुवाद भी हुए जिनमें आदि रामायण, विष्णु पुराण, पारस भाग (फारसी में) सिंहासन बतीसी, ज्ञान प्रबोध उदय चन्द नाटक, भागवत महापुराण, भागवत गीता (संस्कृत) आदि।

12.7. आधुनिक काल (1850 से अब तक)

प्यारे विद्यार्थियों ! अभी तक आपने पंजाबी साहित्य के आदिकाल और मध्यकाल का परिचय प्राप्त किया है। अब आधुनिक काल के विषय में जानेंगे। इस काल में पंजाबी साहित्य का बहुविध विकास हुआ है और अनेक ऐतिहासिक परिवर्तन हुए हैं। पंजाबी साहित्य के इस विकास को जानने के लिये कुछ बातों का परिचय प्राप्त कर लेना आवश्यक है।

पंजाबी के आधुनिक साहित्य का आरम्भ उन्नीसवीं सदी से माना जाता है। 1849 ई. में सिखों की दूसरी लड़ाई के बाद अंग्रेज भारत में व्यापार करने की गरज से आये, अंग्रेजों ने, अन्य इलाकों की भांति, पंजाब को भी अपने राज्य में मिला लिया। इस प्रकार पंजाब फिर गुलाम हो गया। 1857 ई. की भारत की स्वतंत्रता संग्राम की लड़ाई में अंग्रेजों की जीत ने पंजाब में उनके पैर और मजबूत कर दिये। इसके परिणाम स्वरूप यहां पश्चिमी प्रभाव पड़ने लगा। अंग्रेजों की साम्राज्यवादी नीतियाँ जहाँ पंजाब के निवासियों को दो फाड़ करने का प्रयत्न कर रही थी, वहाँ इसके कुछ अच्छे परिणाम भी हुए। यह बात यहाँ स्मरण रखना आवश्यक है कि अंग्रेजों ने जो सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक सुधार किए वे केवल और केवल अपने व्यापारिक हितों को सामने रखकर किए। उन्होंने जो व्यवस्था की वह आधुनिक थी। नहरों, शिक्षा विभागों, स्कूल, कालेज, यूनिवर्सिटियों की स्थापना की। रेलों, सड़कों, डाक-तार आदि की व्यवस्था की। इस प्रकार भौतिकवादी सुविधाओं ने समाज और साहित्य दोनों को प्रभावित किया। यथार्थवादी सोच और पत्र-पत्रिकाओं के प्रवेश ने गद्य का बहुविध विकास किया। इस प्रकार पूंजीवाद ने अपना प्रभाव दिखाया जो बीसवीं सदी के मध्य में अपने वास्तविक रूप में प्रकट हो गया। इस पूंजीवाद ने मध्य श्रेणी के साथ-साथ शहरीकरण की प्रवृत्ति, आत्मकेन्द्रिता की प्रवृत्ति को जन्म दिया। साहित्य में विधा-रूपगत परिवर्तन तो हुए ही।

एक बात विद्यार्थियों सदैव आपको स्मरण रहनी चाहिये कि साहित्य में परिवर्तन एकदम किसी निश्चित तारीख में नहीं होता। यह परिवर्तन अत्यंत धीमी गति से होता है। अतः राजनैतिक परिवर्तनों के बावजूद कुछ पुरानी प्रवृत्तियाँ चलती रहती हैं। पंजाब में अंग्रेजों के आने से जो परिवर्तन हुए उसके बावजूद कुछ परम्परा से चली आ रही प्रवृत्तियाँ चलती रहीं। इनमें किस्सा काव्य और पुराने ढंग का गद्य प्रमुख है। इस युग के किस्सा काव्याधार के प्रमुख कवियों में फ़ज़लशाह (जिसका परिचय पहले दिया जा चुका है) मुहम्मद बख्श (1830-1904 ई.), गंगा राम (1835-1902 ई.), किश न सिंह आरिफ़ (1830-1900 ई.), मुहम्मद बूटा, भगवान सिंह

(1842-1902 ई.), मौलवी गुलाम रसूल (1840-1892 ई.), कालीदास गुजरांवालिया (1865-1944 ई.) आदि ने मध्यकालीन इस विधा को अपने हुनर से जीवित रखा।

जहाँ तक इस समय के गद्य का प्रश्न है तो अंग्रेजों के प्रभुत्व के कारण गद्य का पुराना रूप समाप्त होने लगा। अंग्रेजी गद्य के रूपों को अपनाया गया। पाठ्य पुस्तकें, लेख, कहानी, नावल, नाटक और षोध आदि लिखे जाने लगे। वाक्य विन्यास, शब्द-निर्माण तक में अंतर आ गया। पंजाबी पत्रकारिता अस्तित्व में आई। 1867 ई. में अमृतसर से 'श्री दरबार साहिब' निकलने लगा। 1880 ई. में लाहौर से गुरुमुखी समाचार पत्र, 1886 ई. में यहीं से 'खालसा अखबार', 1896 ई. में 'सिंध सभा गजट' और 1894 ई. में भाई वीर सिंह ने अमृतसर से 'खालसा समाचार' निकाला। इस काल के प्रमुख गद्यकारों में श्रद्धाराम फिल्लौरी (1807-1881 ई.), ज्ञानी ज्ञान सिंह (1822-1925 ई.), बिहारी लाल पुरी (1830-1885 ई.), ज्ञानी दित्त सिंह (1853-1901 ई.), डॉ. चरन सिंह (1853-1908 ई.) आदि का नाम उल्लेखनीय है।

12.7. 1 ईसाई मिशनरियों का योगदान

इसमें संदेह नहीं कि ईसाई मिशनरियों का मूल उद्देश्य अपने धर्म का प्रचार करना था और इसीलिये इनका जन्म भी हुआ। मगर इस कार्य की सिद्धि के लिये प्रांतीय भाषा का पर्याप्त ज्ञान अपेक्षित था। इसी हेतु पंजाबी व्याकरण, कोश, पाठ्य पुस्तकों का उन्हें निर्माण करना पड़ा। पंजाबी गद्य के विकास में उनका इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण योगदान है। 1834 ई. में इसकी स्थापना लुधियाना में हुई और प्रेस शुरू की तथा ढेर सारा ईसाई साहित्य पंजाब में लिखा और छापा जाने लगा। 1851 ई. में न्यूटन ने 'पंजाबी ग्रामर' और 1854 ई. में जैनविअर की सहायता से पहली पंजाबी-अंग्रेजी डिक्शनरी छापी। इसी प्रकार इस्टल क्लेअर ने, जोहन बीन्ज ने भी पंजाबी ग्रामर पर काम किया। सर कैम्पवैल ने पंजाबी शब्दों पर प्रशंसनीय काम किया तो लायल साहब ने कांगडे की कहावतों को एकत्रित किया। इसी प्रकार विल्सन, फालन और टेंपल, वॉकर डेन आदि ने कोश और 'रिपोर्ट' तैयार करके पंजाबी की शब्दावली और कहावतों पर काम किया। इसी प्रकार ओबराइन, रिचर्ड टेंपल, ट्रम्प, ग्रीयर्सन आदि ने इस काम को आगे बढ़ाया। बीसवीं सदी के प्रारम्भ में मैकालिफ़, ग्राहम बेली, एच.जे. रोज़, स्विनर्टन, पादरी हैअरज़ ने पंजाबी इतिहास, ग्रामर कोश रोमांसवादी कथाओं आदि पर काम किया। ईसाई मिशनरियों ने ही 1854 के निकट पंजाबी का पहला पत्र निकाला। यही नहीं इन मिशनरियों ने अपनी देखरेख में पंजाब के विद्वानों से पुस्तकें भी लिखवाईं। इनमें श्रद्धाराम फिल्लौरी, भाई विश नदास पुरी, माया सिंह का नाम लिया जा सकता है। श्रद्धाराम फिल्लौरी की 'सिख राज दी विथिया' एवं 'पंजाबी बातचीत' तो आधुनिक पंजाबी गद्य की पहली पुस्तक मानी जाती है।

ईसाई मिशनरियों का जहाँ यह योगदान था, वहीं लोगों के अंदर यह चेतना भी जागी कि हम अपनी संस्कृति की रक्षा क्यों नहीं कर सकते। उनके अंदर भी अपने धर्म-प्रचार की भावना पैदा हुई। इसी भावना ने पंजाब में सुधारवादी लहर को जन्म दिया और पंजाब में 'सिंह सभा' जैसा मिशनरी संगठन अस्तित्व में आया।

12.7.2 सिंह सभा का पंजाबी साहित्य को योगदान

सिंह सभा पंजाबी भाषा और सिख धर्म के पक्ष वाले विद्वानों की ऐसी संस्था थी जो ईसाई मिशनरियों के सिख धर्म के विरुद्ध प्रचार के विरोध में अस्तित्व में आई थी। इस सभा के तीन प्रमुख उद्देश्य थे - धर्म सुधार, गुरुद्वारा सुधार (पुजारीवाद की विरोधता) सिखों और स्त्रियों की शिक्षा। इन तीनों सुधारों के साथ पंजाबी साहित्य का जो विकास और जो परिवर्तन हुआ, वह अद्भुत है। सिंह सभा ने सबसे पहले 'गुरुमत ग्रन्थ प्रचारक सभा' की स्थापना करके सिख इतिहास से सम्बंधित कुछ प्रामाणिक पुस्तकों को प्रकाशित करवाया जिसमें 'गुरुपर्व प्रकाश', 'गुरुमत सिद्धान्त', 'गुरु प्रणाली' आदि प्रमुख हैं। फिर 'खालसा टेक्स्ट सोसाइटी' ने छोटी-छोटी जीवनीयों प्रकाशित की। गुरुवाणी की व्याख्या गुरुमत आशय के अनुकूल प्राप्त नहीं थीं। अतः सभा ने विभिन्न विद्वानों से गुरुवाणी के आदर्श टीके तैयार करवाये। समाज-सुधार का कार्य करने के लिये इस सभा ने छुआ-छूत, बाल विवाह, विधवाओं की स्थिति, सति-प्रथा और नशे के विरुद्ध भी कई पुस्तकें प्रकाशित करवाई और एक महत्त्वपूर्ण कार्य में सहयोग दिया।

सिंह सभा ने जहाँ गुरुद्वारे बनाये, वहाँ 'खालसा स्कूलों' की स्थापना भी की, जहाँ सिख धर्म की शिक्षा के साथ-साथ स्त्रियों की पढ़ाई का प्रबंध किया। यही नहीं सरकार पर दवाब डालकर सभी सरकारी स्कूलों में पंजाबी अनिवार्य करवाई। इन्होंने पुस्तकालयों की स्थापना भी की जिससे इनका साहित्य लिखे जाने लगे। यूँ पंजाबी भाषा लिखे जाने वाली भाषा के रूप में भी स्थापित हो गई। 1885 ई. में सिंह सभा ने 'खालसा प्रेस' भी लगा लिया, जिससे खालसा समाचार अखबार भी निकलने लगा। सिंह सभा का पंजाबी बोली पर जो सबसे बड़ा और महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ा वह था पंजाबी का साहित्यिक बोली में बदलना। पहले इसे गंवारों की भाषा ही समझा जाता था। इसके विकास का किसी ने प्रयत्न ही नहीं किया। सिंह सभा से विद्वान जुड़े तो पंजाबी भाषा का बहुमुखी विकास हुआ। सिंह सभा ने पंजाबी कवि सम्मेलनों का आयोजन ही नहीं शुरू किया, कवियों के लिये ईनामों की व्यवस्था भी की। विदेशी प्रभावस्वरूप उपन्यास, कहानी, नाटक आदि के विकास का मार्ग खोला। इस प्रकार सिंह सभा का योगदान अविस्मरणीय है।

ईसाई मिशनरियों और सिंह सभा की लहर के साथ-साथ आर्य समाज की लहर, अहमदिया लहर, नामधारी लहर, निर्मल सम्प्रदाय आदि ने पंजाबी लोगों की चेतना को जाग्रत करने, शिक्षा के क्षेत्र को विकसित और समर्थन देने और प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से पंजाबी साहित्य को विकसित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

12.7.3 पंजाबी कविता

अभी तक हमने आधुनिक काल की पृष्ठभूमि में पंजाबी साहित्य के विकास के प्रेरक तत्वों का परिचय दिया है। अब आधुनिक पंजाबी काव्य का परिचय प्राप्त करेंगे।

आधुनिक पंजाबी कविता के कई पड़ाव हैं जिन्हें अलग-अलग बाँट कर देखा जाना चाहिए। विद्वानों ने अलग-अलग भाग किए भी हैं। पहली पीढ़ी, दूसरी पीढ़ी जैसा विभाजन भी किया है।

कुछ विद्वानों ने 1947 ई. को विभाजन रेखा बांट कर भी विभाजन किया है। हमने संक्षेप में सभी भागों को एक स्थान पर एकत्रित कर दिया है।

प्रायः सभी विद्वान आधुनिक कविता का प्रारम्भ भाई वीर सिंह से मानते हैं। पश्चिमी प्रभाव के फलस्वरूप पंजाबी कविता ने अपना रंग रूप बदला। इन्होंने पंजाबी का किस्सा काव्य की पुरानी परम्परा से निकालकर पश्चिमी रंग का नवीन रूप दिया। संभवतः इसलिये कुछ विद्वान इसे 'नवीन काल' कह कर भी पुकारते हैं। इस युग के कवियों का मूल उद्देश्य कविता को नवीन रूप रंग देना था। इनमें से कुछ पर सिंह सभा लहर का प्रभाव भी रहा। इनमें भाई वीर सिंह (1872-1957 ई.), लाला धनी राम चातरिक (1876-1954 ई.), प्रो. पूरण सिंह (1881-1931 ई.), कृपा सागर (1879-1939 ई.), चरन सिंह श हीद (1891-1935 ई.), डॉ. मोहन सिंह (1899-1984 ई.), दीवान सिंह कालेपानी (1894-1944 ई.) आदि प्रमुख हैं। काव्य में नवीन चेतना का विकास इन्हीं कवियों ने किया। उन्नीसवीं और बीसवीं सदी में जो परिवर्तन होता है उसमें 'डार्विन' के 'विकासवाद', सिंगमंड फ्रायड के 'मनोविज्ञान', मार्क्स के 'द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद' का और 'ज्यां पाल सार्त्र' के 'अस्तित्ववाद' का बहुत बड़ा हाथ है। ईश्वर के अस्तित्व पर इन सबने प्रश्न चिह्न लगाया। भाई वीर सिंह ने 'नव रहस्यवाद' का प्रारम्भ किया तो प्रो. पूरण सिंह ने 'रोमांसवादी' कविता की नींव रखी। यही धारा आगे चल कर प्रगतिवाद में बदल गई। इस धारा के अन्य प्रमुख कवि प्रायः रोमांसवाद से निकल कर आये थे – शायद इसलिये इन्हें 'रोमांसवादी प्रगतिवादी काव्य प्रवृत्ति' कह कर पुकारा जाता है। 1936 ई. में चली प्रगतिवादी धारा का सबसे पहला प्रभाव संतसिंह सेखों और प्रो. मोहन सिंह ने ग्रहण किया। बाद में बहुत से कवियों ने इसे अपनाया। इनमें अमृता प्रीतम, बाबा बलवंत, प्रीतम सिंह सफ़ीर का नाम विशेष रूप से लिया जा सकता है। प्रो. मोहन सिंह और बाबा बलवंत ने जहाँ सामान्य जन और शोषक समाज की बात की वहाँ अमृता प्रीतम ने स्त्री के उस दोहरे संताप को अभिव्यक्ति दी जो उसे पूंजीवादी और पुरुष प्रधान व्यवस्था का हिस्सा होते हुए भोगनी पड़ी। सफ़ीर ने गले सडे प्राचीन विचारों को त्याग कर क्रांति, परिवर्तन का समर्थन दिया।

1947 ई. में भारत विभाजन अंग्रेजों की साम्राज्यवादी और 'फूट डालो और राज करो' की नीति का स्पष्ट उदाहरण है। भारत विभाजन का सबसे अधिक प्रभाव पंजाब पर पड़ा क्योंकि पंजाब विभाजित हो गया। जो लूट-पाट, क्रत्ल, बलात्कार और धर्मान्धता का पाष्विक नृत्य दोनों तरफ हुआ और लोगों को अपना घर-बार छोड़कर पलायन करना पड़ा। साहित्यकार की संवेदना उसे अभिव्यक्त किए बिना न रही। प्रो. मोहन सिंह, अमृता प्रीतम, डॉ. हरभजन सिंह, गोपाल सिंह दर्दी, लाल सिंह कंवल ने इस विभाजन से सम्बंधित रचनाएँ कीं। पाकिस्तान के अहमद राही, अहमद सलीम का नाम लेना भी यहाँ आवश्यक है जिन्होंने इस विभाजन की पीड़ा को वहाँ अभिव्यक्त किया।

प्रगतिवाद में बार-बार एक ही प्रकार के प्रतीकों और विचारों के दोहराव ने पंजाबी में प्रयोगवादी (1961-1970 ई.) कविता को जन्म दिया। इसका प्रारम्भ 1961 ई. में 'पंजाबी साहित्य प्रयोग अकादमी' के द्वारा माना जाता है जिसे 1962 ई. को जालंधर श हर में प्रयोगवादी कवियों ने

और स्पष्ट किया। प्रयोगवाद की कोई लम्बी परम्परा नहीं रही। भले ही डॉ. राजिन्दर सिंह सेखों ने इसे एक बुखार कहा है मगर इस सच्चाई से इनकार नहीं किया जा सकता कि नया काव्य रूप, नया बिंब विधान और आधुनिक मनुष्य की नई समस्याओं को अभिव्यक्ति इसी काव्य से मिली। यह भी सच है कि ये कविता आम इन्सान के होने और सोचने से कोसो दूर है। इस युग के कवियों में सुखपाल वीर हसरत, जसवीर सिंह आहलूवालिया, रवीन्द्र रवि, अजायब कमल आदि हैं। इस काव्यधारा को आगे के कवियों ने 'कागज़ का गर्भपात' और 'कलम की नोक' को 'बांझ' कहा है। संभवतः इसलिये इस काव्यधारा के विरोध में 'जुझारवादी' काव्यधारा (1970-80 ई.) प्रचलित हुई। इसका प्रारम्भ अवतार सिंह संधू उर्फ 'पाश' के काव्य-संग्रह से हुआ। इसके प्रमुख कवि 'लाल सिंह दिल', 'संतराम उदासी', 'दर्शन खटकड़', 'ओम प्रकाश शर्मा' तथा 'अमरजीत चन्दन' हैं। इस काव्यधारा ने बंगाल की नक्सलवादी लहर से प्रेरणा या आधार प्राप्त किया। इन कवियों का मूलाधार राजनीतिक व्यवस्था में परिवर्तन लाना था। ये कविता ज़मीन से जुड़ी यथार्थवादी कविता है जो बैलों की पीठ पर पड़ी लाशों, पिचके गालों, पिता की समाप्त हो चुकी शराब और बेटियों के समाप्त हो चुके हास्य की बात करती हैं। इस काव्यधारा का कवि 'पाश' पंजाबी में नयी अभिव्यक्ति क्षमता लेकर आया। कुछ पक्षों से उसे हिन्दी के 'धूमिल' के समकक्ष रखा जा सकता है। जुझारवादी काव्यधारा जिसे कुछ विद्वान नव प्रगतिवाद भी कहते हैं से संवाद रचाती एक और काव्यधारा चलती है जिसे आधुनिकतावादी या सौंदर्यवादी कविता (सोहजवादी) कह कर पुकारा जाता है। इसे प्रयोगवादी कविता का अगला पड़ाव भी कहा जाता है। इसे गहरे रंग देने का काम हरभजन सिंह और षिवकुमार बटालवी ने किया। बटालवी पंजाबी के सर्वाधिक लोकप्रिय कवियों में से एक है और उनकी कविता का मूलभाव 'वियोग या दुःख' है। इसे और अधिक आधुनिक बनाने का काम विश्वनाथ तिवारी, सतिन्दर सिंह नूर, मोहनजीत, मनजीत टिवाना, तारा सिंह कामिल, सोहन सिंह मीषा ने किया। इन पर सार्त्र, कामू, बैकेट आदि का प्रभाव है। ये लोग वर्तमान को जीने में नहीं 'भोगने' में विश्वास करते हैं।

आठवें दशक के अंत में आतंकवाद ने खालिस्तान का नाम लेकर सिर उठाया। 'बंदूक' (आतंकी) और 'बैल्ट' (पुलिस) के बीच आम आदमी का जीवन कठिन हो गया। ऐसी स्थिति में पंजाबी कविता आम आदमी की पीड़ा की अभिव्यक्ति का साधन बनी। एक दशकचले इस आतंकवादी संकट पर प्रायः सभी कवियों ने कविता की। कुछ नये कवि भी जुड़े जिनमें धर्म कमियाना, अमरजीत कोके, गुरतेज कुहारवाला, स्वर्णजीत सटी प्रमुख हैं। नवें दशक के बाद जब रूस के किले बिखरे और भारत ने उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण की नीति अपनाई तो पूंजीवाद को खुल-खेलने का अवसर मिला। ऐसे में जहाँ आम आदमी भूमंडलीकरण का हिस्सा बना वहीं उसका घर उसका गाँव शहरीकरण की भेंट चढ़ा। व्यक्ति अपनी संवेदना, सच्चाई को बचाने की फिक्कर करता रहा। ऐसी स्थिति में जो कविता रची गई उसे 'समकालीन' अथवा 'उत्तर आधुनिक' कविता कहा जाता है। बीसवीं और इक्कीसवीं सदी की कविता की मुख्य विशेषता स्वकेन्द्रिकता है। अब कवि बाहर की नहीं अपने अंदर की युद्ध भूमि में युद्ध लड़ता है।

उसका परिवेश उसके भीतर समा गया है - इसी से वह संवाद रचाता है। इस युद्ध भूमि में वह अपना विरोधी स्वयं है। ऐसे समय के कवियों में सुरजीत पातर, रविन्दर रवि, अजायब कमल, सुखविन्दर, अमृत, मोहनजीत, जसवंत दीद, गुरभजन सिंह गिल, इन्द्रजीत हसनपुरी, दर्शन बूटर, रविन्द्र भट्टल आदि के नाम लिये जा सकते हैं।

पंजाबी कविता के साथ-साथ पंजाबी ग़ज़ल भी लिखी जाती रही है। शुरू में मंचीय कवियों ने इसे अपनाया लेकिन वे इसे उच्च स्तरीय न बना सके। प्रगतिवादियों में प्रो. मोहन सिंह, बावा बलवंत ने इसे विकसित करने में योगदान दिया। बाद में तरख्त सिंह, दीवान सिंह मिषा, षिवकुमार बटालवी, जगतार और सुरजीत पातर ने इसे बुलंदियों तक पहुँचाया। डॉ. राजिन्दर सिंह सोखों का मानना है कि आज 'कुछ ही ग़ज़लें और बहुत कुछ ग़ज़ल जैसा' रचा जा रहा है। कुछ ग़ज़ल लिखने वाले ग़ज़लकार हैं - एस.तरसेम, एस. नसीम, सुरजीत सखी, सुखविन्दर अमृत, गुरतेज कुहारवाला, गुरभजन गिल, हरबंस माछिवाडा, जगदीप आदि।

इस प्रकार आधुनिक पंजाबी कविता ने लघु-कविता, मुक्तछंद कविता, नज़्म, महाकाव्य, ग़ज़ल, गीत, दोहै, काव्य नाटक आदि प्रायः सभी काव्य-रूपों की यात्रा की है जो नदी की भांति निरन्तर प्रवाहमान है। यहाँ यह उल्लेख करना भी आवश्यक है कि पंजाबी कविता केवल भारत में ही नहीं पाकिस्तान, ब्रिटेन, कैनेडा, अमेरिका में भी रची जा रही है। इसमें प्रवासी पंजाबी कविता का अपना विशेष महत्त्व है।

12.7.4 पंजाबी उपन्यास

प्रिय विद्यार्थियों अभी तक हमने कविता के विभिन्न पड़ावों की जानकारी ली है। अब हम गद्य साहित्य का परिचय प्राप्त करेंगे। यह बात निर्विवाद है कि भारत में उपन्यास पश्चिम की देन है। पंजाबी के पहले मौलिक उपन्यास को लेकर विवाद है। प्रो. ब्रह्मजीत सिंह, भाई वीर सिंह के पिता डॉ. चरण सिंह द्वारा रचित 'महारानी शराब कौर' (1893 ई.) को पहला उपन्यास मानते हैं जबकि डॉ. राजेन्द्र सिंह सेखों एवं परमिन्दर सिंह भाई वीर सिंह रचित 'सुन्दरी' (1898 ई.) से मानते हैं। अधिकांश विद्वान इससे सहमत हैं। पंजाबी उपन्यास आदर्शवाद, यथार्थवाद से होता हुआ नवीन विचारधारा से जुड़ता चला गया है। पहले दौर के उपन्यासों पर सुधारवादी लहरों का प्रभाव है। अतः उनके उपन्यासों में आदर्शवाद देखने को मिलता है। पहले दौर के प्रारम्भिक उपन्यासकारों में भाई वीर सिंह (1872-1957 ई.), मोहन सिंह वैद (1881-1936 ई.), चरण सिंह श हीद (1881-1935 ई.) प्रमुख हैं। ये उपन्यास कला-पक्ष से कमजोर और दृष्टि के स्तर पर तंग दायरे को प्रस्तुत करने वाले उपन्यास हैं।

दूसरे दौर का उपन्यास 1930 ई. के आस-पास शुरू होता है। इसमें रचनाकार का उद्देश्य सामाजिक समस्याओं का चित्रण और उनसे मुक्त होने का संदेश देना है। ये उपन्यास रोमानी झुकाव छोड़ कर यथार्थवादी दृष्टि अपनाते हैं। अब लोग भौतिक जीवन को धर्म के रंगीन चश्में के स्थान पर नंगी आँख से देखने लगे थे। इस दौर का प्रारम्भ पंजाबी के सर्वाधिक लोकप्रिय उपन्यासकार नानक सिंह (चिट्टा लहू, पवित्र पापी, इक म्यान दो तलवारा) से होता है जिन्होंने

38 मौलिक और 8 अनुवादित उपन्यास पंजाबी को दिये। इनके अतिरिक्त इस दौर के उपन्यासकारों में सुरिन्द्र सिंह नरूला (पओ-पुतर, दीन-दुनिया), संत सिंह सेखों (बाबा उसमान, लहू मिट्टी), जसवंत सिंह कंवल (रात बाकी है, सिविल लाइनज़), नरिन्दर पाल सिंह (टापू, बामुलाहिजा होषियार), सोहन सिंह सीतल (दीवे दी लौ, युग बदल गया), करतार सिंह दुग्गल (हाल मुरीदां दा, ओदी चकोडियाँ), अमृता प्रीतम (डॉ. देव, नागमणि, जेब कतरे, दिल्ली दी गलियाँ, पिंजर) आदि प्रमुख उपन्यासकार हैं। इन्होंने जीवन के यथार्थ को स्पष्ट अभिव्यक्ति दी है। तीसरे दौर का उपन्यास सुधारवाद और यथार्थवाद के दायरों से निकलकर प्रयोगवाद और आलोचनात्मक यथार्थवाद के इर्द-गिर्द घूमता है। 1960 के आस-पास ये प्रवृत्तियाँ उभरीं। प्रयोगवादी रचनाकारों में सुरजीत सिंह सेठी (एक खाली प्याला), नरिंजन तस्नीम (खोए अर्थ), सुखबीर (पानी दा पुल, गर्दिश) प्रमुख हैं। आलोचनात्मक यथार्थवाद को आधार बनाने वालों में दलीप कौर टिवाना (एहो हमारा जीवणां, कथा कहो उर्वषी), गुरदयाल सिंह (परसा, अध चाँणनी रात), रामस्वरूप अणखी (कोठे खड़क सिंह), अजीत कौर (पोस्टमार्टम, फालतू औरत) आदि प्रमुख हैं।

आठवें दशकके अंत और नौवें दशक के शुरू में उत्तर यथार्थवादी दौर का उपन्यास शुरू हुआ। अब उपन्यास में अन्तर्विरोध का चित्रण होने लगा। नायक की जगह 'लघु मानव' ने ले ली और परम्परागत नायक का स्थान प्रतिनायक ने ले लिया। इस दशकमें पुराने उपन्यासकारों में गुरदयाल सिंह, दलीप कौर टिवाना, जसवंत सिंह कंवल, निरंजन तस्नीम ने ऐसे उपन्यास रचे। इस दौर के उपन्यासकारों में इन्दर सिंह खामोश (इक ताजमहल, काफिर मसीहा), मितर सेन मीत (कौरव सभा, तफ़तीश), बलदेव सिंह (लाल बत्ती, अन्नदात), निंदर गिल (पल पल मरना, दास्तां दलितां दी), बलविन्दर कौर बराड़ प्रमुख हैं।

पाकिस्तान और विदेशी धरती पर भी पंजाबी में उपन्यास लिखे जा रहे हैं जिनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

12.7.5. पंजाबी कहानी

वैसे तो लोक कथाएँ कहानी का आरम्भ मानी जा सकती हैं। पंजाबी में गुरुओं की साखियों को भी कथात्मकता के कारण कहानी कहा जा सकता है मगर सही अर्थों में कहानी का विकास पश्चिमी से ही हुआ है और पंजाबी में इसका श्रेय भाई मोहन सिंह वैद (1881-1936 ई.) को दिया जाता है। उसके बाद चरण सिंह शहीद (1891-1935 ई.) ने व्यंग्यात्मक कहानियों की रचना की। नानक सिंह, गुरबख्श सिंह प्रीतलड़ी और ज्ञानी गुरमुख सिंह मुसाफ़िर ने एक स्वतंत्र विधा के रूप में कहानी को स्थापित कर दिया। इसे आदर्शवादी यथार्थवादी कहानी कहा जाता है।

पंजाबी कहानी अपने अगले दौर में पहुँचकर आधुनिक संस्कार प्राप्त कर लेती है। इसे विद्वान प्रगतिवादी यथार्थवादी कहानी का नाम भी देते हैं। अपनी विधागत आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ-साथ कहानी ने स्वयं को समाज के आम आदमी के सरोकारों से जोड़ा। कहानी आदर्श का पल्ला छोड़कर जीवन के यथार्थ का दामन थामती अपने विकास का मार्ग प्रशस्त करती है। ऐसे

पंजाबी के कहानीकारों में—गुरबकश सिंह प्रीतलड़ी, करतार सिंह दुग्गल, संत सिंह सेखां, सुजान सिंह, देवेन्द्र सत्यार्थी, कुलवंत सिंह विर्क, नौरंग सिंह, महैन्द्र सिंह जोशी, जसवंत सिंह कंवल, बलवंत गागी, सुखबीर, नवतैज सिंह, अमृता प्रीतम, गुरदयाल सिंह आदि का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

कहानी के तीसरे दौर को 'आधुनिकतावादी कहानी' कह कर पुकारा जाता है क्योंकि इस दौर की कहानी बाहर और भीतर से पिछली कहानी से अलग दिखाई देती है। इस दौर की कहानी साधारण मनुष्य के स्थान पर लघु मानव को आधार बनाती है जो अनेक समस्याओं से घिरा है। ये कहानी यथार्थ के बहुआयामी पक्षों को उद्घाटित करती है। इस युग में प्रवासी लेखक भी आ जुड़ते हैं। इस युग के प्रमुख कहानीकारों में रामस्वरूप अणखी, जसवंत सिंह विरदी, गुलज़ार संधु, मोहन भण्डारी, अतरजीत, अजीत कौर, बरियाम संधु, प्रेम प्रकाश, गुरवचन पुल्लर का नाम लिया जा सकता है जिन्होंने पंजाबी कहानी में गुणात्मक वृद्धि की, पाकिस्तान में भी कहानी लिखी जा रही है जिनमें जावेद गरजाखी, आगा अशरफ़, अफ़ज़ल अहमद रंधावा, मंषा यार, अफ़ज़ल तौसीफ़, ज़मील अहमद पाल प्रमुख हैं। अन्य प्रवासी पंजाबियों ने भी कहानी में योगदान डाला है जिनकी लम्बी सूची है।

12.7.6. पंजाबी नाटक एवं एकांकी

प्यारे विद्यार्थियों ! अभी तक हमने आधुनिक पंजाबी कविता, उपन्यास और कहानी का परिचय प्राप्त किया है। अब हम पंजाबी नाटक, एकांकी, निबंध और आलोचना का परिचय प्राप्त करेंगे। एक बात सदैव स्मरण रखें कि नाटक रंगमंच की वस्तु है- यही बात इसे उपन्यास, कहानी आदि से अलग करती है। दूसरी बात यह स्मरण रखें कि गद्य की सभी विधाओं का जन्म अंग्रेज़ों के आने और उनके साहित्य से परिचय के बाद ही हुआ है। पंजाबी नाटक भी इसका अपवाद नहीं है। नोरा रिचर्डज़ की प्रेरणा से पहले, पंजाबी रंगमंच कमरों के भीतर ही रहा - फिर ये रंगमंच पर गया। इन्हीं की प्रेरणा से ईश्वरचन्द्र नन्दा के नाटक अस्तित्व में आये। उनके नाटक 'दुल्हन' को पहला पंजाबी आधुनिक नाटक होने का श्रेय प्राप्त हुआ। ईश्वरचन्द्र नन्दा के साथ जिन नाटककारों ने अपना योगदान दिया उनमें हरचरण सिंह (कमला कुमारी, हिन्द दी चादर), संतसिंह सेखों (कलाकार, वारिस), बलवंत गागी (लोहा कुट्ट, केसरो, सौतन) प्रमुख हैं। बलवंत गागी ने पंजाबी नाटक में मनोविज्ञानिक विषयों को स्थान दिया। पश्चिमी नाटक की संकेतिकता, प्रतीकात्मकता को उसी ने पंजाबी नाटक में प्रतिष्ठित किया।

पंजाबी नाटक को 1947 ई. के विभाजन के कारण लाहौर से दिल्ली और शिमला में स्थानांतरण करना पड़ा, फिर 1962, 65 और 71 ई. के युद्धों ने उसे नयी विषयवस्तु और संचार माध्यमों से भी जोड़ा। अतः पंजाबी नाटक नये विषयों को अपनाता है और संचार की नयी विधियों की खोज करता है। संभवतः इसीलिये कुछ विद्वान इसे 'प्रयोग का दौर' कह कर भी पुकारते हैं। काव्य नाटक और रेडियो नाटक तो इस काल में रचे ही गये - एब्सर्ड थियेटर, हंगामी थियेटर, एपिक थियेटर या गाँव का थियेटर आदि नाट्यशैलियों को इसने अपनाया। गुरशरण सिंह (जदो

रोशनी हुंदी है, तंदूर तथा अन्य नाटक, बाबा बोलदा है, कपर्णू जैसे प्रतिबद्ध नाटककार एवं रंगकर्मी ने गाँव की ओर मुँह मोड़ कर अत्यंत सम्मान और लोकप्रियता प्राप्त की। इस समय के अन्य नाटककारों में सुरजीत सिंह सेठी (काफी हाऊस, किंग, मिरजा और सपेरा), कपूर सिंह घुम्मन (जैलदार, पुतलीघर), हरशरण सिंह (फुल्ल कुम्लाह गया, उदास लोग), गुरचरण सिंह जसूजा (मकड़ी दा जाल, पछतावा, परियाँ) आदि प्रमुख हैं। ये नाटककार प्रयोग करते रहे और अपने चरमोत्कर्ष तक पहुँचे।

इन्हीं नाटककारों के साथ-साथ 1975 ई. में नये नाटककार मैदान में आते हैं। इन में आत्मजीत (रिश्तियाँ दा की रखिये नां, चाबियाँ और अन्य एकांकी, शहर बीमार है) तथा अजमेर औलख (अन्ने निशानचीं, मेरे चुनिंदा एकांकी, इक सी दरिया) के नाम विशेष रूप से लिये जा सकते हैं। इनके अतिरिक्त केवल धालीवाल, स्वराजबीर पाली भूपेन्द्र, कुलदीप सिंह दीप आदि का नाम भी आज के नाटककारों में लिया जा सकता है। इन सबने मिलकर नाटक को ऊँचाईयों तक पहुँचाया। आज दूरदर्शन के धारावाहिकों एवं सिनेमा के शक्तिशाली आक्रमण के बावजूद यदि नाटक जीवित है, तो उसमें पंजाब में विश्वविद्यालयों द्वारा हर वर्ष स्कूलों, कालेजों में करवाये जा रहे 'युवक मेलो', भाषा विभाग की 'नाट्य प्रतियोगिताओं' का बड़ा हाथ है।

12.7.7. पंजाबी निबंध

यह बात पहले ही स्पष्ट की जा चुकी है कि ईसाई मिशनरियों के और प्रेस के आगमन से पंजाबी गद्य साहित्य का विकास हुआ। निबन्ध का अर्थ है अच्छी तरह बांध-संवार कर प्रस्तुत की गई रचना। इसके पर्याय रूप में पंजाबी में 'लेख' शब्द भी प्रचलित है।

पंजाबी में साहित्यिक एवं प्रौढ़ निबन्ध लिखने की परम्परा प्रो. पूर्ण सिंह (1881-1931 ई.) से प्रारम्भ होती है जो हिन्दी और पंजाबी में एक समान समादृत हैं। इनके बाद एस.एस. चरण सिंह श हीद का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। भाई जोध सिंह भी इसी दौर के निबन्धकार हैं - इनका मुख्य विषय धर्म- विशेषतः सिख धर्म रहा है। प्रिंसिपल तेजा सिंह को निबंधों में शिरोमणि माना जाता है क्योंकि उन्होंने स्तरीय और टकसाली निबंध लिखे। अनुभव की मौलिकता और अभिव्यक्ति की सटीकता गुरबख्त सिंह प्रीतलड़ी में देखने को मिलती है। डॉ. बलबीर सिंह ने दार्शनिक एवं काव्यशास्त्र से सम्बंधित निबंध लिखे।

पंजाबी निबंध के कैनवस को विषाल करने में हरिन्दर सिंह रूप, एस.एस. अमोल, कपूर सिंह आई.सी.एस., प्रो. जगदीश सिंह, बलराज साहनी, गियानी लाल सिंह, ज्ञानी गुरदित्त सिंह का नाम विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है। इनके निबंधों में विभिन्न विषयों को वर्णित किया गया है। हास्य-व्यंग्यपरक निबंधकारों में प्रो. ध्यान सिंह, डॉ. गुरनाम सिंह धीर का नाम विशेष रूप से लिया जा सकता है। पंजाबी में ललित निबंधकार के रूप में कुलवीर सिंह कंग (1936 ई.) का योगदान महत्त्वपूर्ण है। पंजाबी में निबन्ध लेखन पत्र-पत्रिकाओं की भेंट अधिक हुआ है। इस सम्बंध में अब लेखक जाग्रत हुए हैं और इस विधा का और विकास होने लगा है।

12.7.8. पंजाबी आलोचना

आलोचना का अर्थ है किसी कला या साहित्यिक कृति का सर्वांगीण विप्लेशण। इस दृष्टि से पंजाबी के कुछ आलोचक गुरू नानक या फिर मध्यकालीन किस्सा काव्यकारों के अपने पूर्ववती काव्यकारों के बारे में की टिप्पणियों को पहली आलोचना मानते हैं। यदि इसे छोड़ दिया जाये और आलोचना के मानक रूप को सामने रखा जाये तो डॉ. राजिन्द्र सिंह सेखों के अनुसार संत सिंह सेखों पहले आलोचक हैं। आलोचना की विभिन्न दृष्टियाँ पंजाबी आलोचना में मिल जाती हैं जैसे प्रभाववादी प्रशंसावादी आलोचना (बाबा बुद सिंह, प्रो. पूरण सिंह, प्रि. तेजा सिंह, गोपाल सिंह दर्दी आदि), मार्क्सवादी (संत सिंह सेखों, किश न सिंह, अतर सिंह, नज़्म हुसैन सय्यद) रूपवादी संरचनावादी (डॉ. हरभजन सिंह, डॉ. तिरलोक सिंह कंवर, डॉ. आत्मजीत सिंह, सुरिन्दर सिंह नूर, जगबीर सिंह, डॉ. महिन्दर कौर गिल, डॉ. सतिन्दर सिंह, अमरीक सिंह पुन्नी, डॉ. हरचरन कौर आदि) नव मार्क्सवादी (टी.आर विनोद, रविन्दर सिंह रवि, तेजवंत सिंह गिल, केसर सिंह केसर, जोगिन्दर सिंह राही आदि)।

पंजाबी में उत्तर आधुनिक, विखण्डवाद, उत्तर मार्क्सवाद, उत्तर संरचनावाद के साथ-साथ दलित चेतना और स्त्री-विमर्ष को भी आधार बनाया गया है। विधागत विशेषताओं को भी आधार बनाकर आलोचना हुई है। ऐसे आलोचकों में गुरभगत सिंह, आत्म सिंह रंधावा, तेजवंत सिंह गिल, अमरजीत गिल, डॉ. सुरजीत सिंह भट्टी, डॉ. सर्वजीत सिंह, सतिन्दर सिंह नूर, बलविन्दर सिंह आदि का नामोल्लेख किया जा सकता है।

12.7.9. नव्यतर गद्य विधाएँ

पंजाबी में नयी गद्य-विधाओं में भी लेखन हुआ है। आत्मकथा का प्रारम्भ नानक सिंह (मेरी दुनिया) से होता है। उल्लेखनीय आत्मकथाओं में प्रि. तेजा सिंह (आरसी) गुरबख्श सिंह प्रीतलडी (मेरी जीवन कहानी-तीन भाग) बलराज साहनी (मेरी फिल्मी आत्मकथा), अमृता प्रीतम (रसीदी टिकट), दिलीप कौर टिवाना (नंगे पैरों का सफर, पीले पत्तों की दास्तान), बलवंत गार्गी (नंगी धूप) अजीत कौर (खानाबदोश) हरभजन सिंह (चोला टाकियावाला) प्रमुख हैं। जीवनी महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों के जीवन को आधार बनाकर लिखी जाती है। पंजाब के सभी गुरूओं की जीवनीयों के अतिरिक्त महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू, सुभाषचन्द्र बोस, अब्दुल कलाम आज़ाद, श. हीद भगत सिंह आदि की जीवनीयों लिखी गईं। लेकिन ये सारी जीवनीयों में श्रद्धा और भावुकता अधिक है।

1960 ई. के बाद की जीवनीयों में यह तत्व क्षीण होता है और धर्म के क्षेत्र में भी उनकी रुचि कम हुई है। सामाजिक राजनैतिक एवं साहित्यिक जीवनीयों लिखी गईं। इनमें संत सिंह सेखों (जुहू दा मोती, बलराज साहनी), वरियाम संधु का (कुशती दा ध्रुव तारा), बलवंत गार्गी का 'पंजाब दे कलाकार' का उल्लेख किया जा सकता है।

पंजाबी में 'रेखाचित्र' विधा को भी रचनाकारों ने अपनाया है। पहले रेखाचित्र निबन्धनुमा रेखाचित्र थे। सही अर्थों में 'रेखाचित्र' लिखने वाले पहले लेखक बलवंत गार्गी हैं। 'निम्म दे

पत्ते', 'सुरमे वाली आँख', 'हसीन चेहरे' उनके रेखाचित्र संग्रह हैं। कुलवीर सिंह कंग ने 'बदलां दे रंग', 'पत्थर लकीर', 'पककी इंटें' जैसे रेखाचित्र संग्रह दिये। जीत सिंह सीतल के 'मित्र मेरे वो', अमृता प्रीतम का 'किरमची लकीरें', जसवंत सिंह विरदी की 'माता तुम महान', अजीत कौर का 'तकिए दा पीर', कुलदीप सिंह का 'दरिआवां दी दोस्ती', करतार सिंह दुग्गल का 'याद करते हुए', सरवन सिंह की 'पंजाबी खिलाड़ी', दलीप कौर टिवाना की 'जीने योग्य' आदि के रेखाचित्र संग्रह महत्त्वपूर्ण हैं।

इन नयी विधाओं के साथ-साथ डायरी, इन्टरव्यू, सफ़रनामों भी पंजाबी में रचे गये। इन विधाओं में सफ़रनामों में पंजाबी के लेखकों ने अधिक रूचि ली है। षोध एवं कोश कार्य भी विश्वविद्यालयों की सहायता से पर्याप्त हुआ है। पंजाबी में अनुवाद कार्य भी हुआ है - सरकारी प्रकाशनों द्वारा भी, गैर सरकारी प्रकाशनों द्वारा भी। ये अनुवाद अंग्रेज़ी, संस्कृत, फारसी और हिन्दी से हुए हैं। इसने पंजाबी साहित्य की श्रीवृद्धि में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

12.8. सारांश

उपर्युक्त अध्ययन से आपको न केवल पंजाबी साहित्य का परिचय प्राप्त हुआ होगा, इसके क्षेत्रों, इसकी क्षमता की भी जानकारी मिली होगी। आधुनिक युग से पहले पंजाबी की मूल धारा कविता रही है जो अपने चरमोत्कर्ष तक पहुँची है। आधुनिक काल की सबसे बड़ी देन गद्य का विस्तार है और नावल, कहानी, नाटक, आत्मकथा, रेखाचित्र, सफ़रनामों, षोध और कोश जैसी नई विधाओं का जन्म एवं विकास हुआ है। काव्य में भी एक स्पष्ट पार्थक्य दिखाई पड़ता है और यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि पश्चिम की चिन्तन धाराओं के साथ पंजाबी कदम से कदम मिलाकर आगे बढ़ रही है। प्रवासी लेखक भी इसमें महत्त्वपूर्ण योगदान डाल रहे हैं।

12.9 शब्दावली

- गुरूमुखी – पंजाबी भाषा की लिपि
- साहित्येतिहास – साहित्य का इतिहास
- चित्तवृत्ति – हृदय की अभिरूचि
- एकरसता – एक समान स्थिति
- त्रुटि - गलती

12.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भाषा विज्ञान कोश : भोलानाथ तिवारी
2. हिन्दी और उसकी विविध बोलियाँ: दीपचन्द जैन, डॉ. कैलाश तिवारी
3. हिन्दी का राष्ट्रभाषा के रूप में विकास: डॉ. शिवराज वर्मा

4. हिन्दी भाषा का स्वरूप विकास: अवधेश्वर अरूण
5. भारतीय भाषाओं के साहित्य का इतिहास: केन्द्रिय हिन्दी निदेशालय
6. आज का भारतीय साहित्य: सं. सर्वपल्ली राधाकृष्णन

12.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. पंजाबी साहित्य के आदिकाल पर प्रकाश डालिए तथा गुरुमत काव्य किसे कहते हैं? इसका परिचय दीजिए।
2. पंजाबी साहित्य का विस्तृत विवेचन कीजिये तथा पंजाबी साहित्य के विकास में ईसाई मिशनरियों के योगदान का उल्लेख कीजिए।
निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए:-
 1. श्री गुरु ग्रंथ साहिब
 2. वीर काव्य अथवा वार काव्य

इकाई 13 राजस्थानी साहित्य का इतिहास एवं परिचय

इकाई की रूपरेखा

- 13.1 प्रस्तावना
- 13.2 उद्देश्य
- 13.3 राजस्थानी भाषा और बोलियाँ
 - 13.3.1 डिंगल और पिंगल
 - 13.3.2 राजस्थानी भाषा की लिपि (देवनागरी और मुड़िया लिपि)
 - 13.3.3 राजस्थानी भाषा की विविध बोलियाँ
- 13.4 राजस्थानी साहित्य का इतिहास: नामकरण और काल विभाजन
- 13.5 राजस्थानी साहित्य का आदिकाल
 - 13.5.1 आदिकालीन परिवेश
 - 13.5.2 आदिकालीन राजस्थानी साहित्य की प्रवृत्तियाँ
 - 13.5.2.1 विषयवस्तुगत (संवेदनागत) प्रवृत्तियाँ
 - 13.5.2.2 भाषा एवं शिल्पगत प्रवृत्तियाँ
- 13.6 राजस्थानी साहित्य का मध्यकाल
 - 13.6.1 मध्यकालीन राजस्थानी साहित्य का परिवेश
 - 13.6.2 मध्यकाल के प्रतिनिधि कवि और रचनाएँ
 - 13.6.3 मध्यकालीन राजस्थानी साहित्य की प्रवृत्तियाँ
 - 13.6.3.1 विषयवस्तुगत (संवेदनागत) प्रवृत्तियाँ
 - 13.6.3.2 भाषा एवं शिल्पगत प्रवृत्तियाँ
- 13.7 राजस्थानी साहित्य का आधुनिककाल
 - 13.7.1 आधुनिक कालीन परिवेश
 - 13.7.2 आधुनिक कालीन राजस्थानी काव्य
 - 13.7.2.1 स्वतन्त्रता से पूर्व काव्य एवं प्रवृत्तियाँ
 - 13.7.2.2 स्वातन्त्र्योत्तर काव्य एवं प्रवृत्तियाँ
 - 13.7.3 गद्य की विविध विधाएँ: परिचय
- 13.8 सारांश
- 13.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

13.10 निबन्धात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

भारत देश के परिदृश्य में राजस्थान का सांस्कृतिक वैभव और साहित्यिक विरासत अमूल्य है। इस प्रदेश की भौगोलिक, ऐतिहासिक और प्राकृतिक विविधता अनोखी है। त्यागमयी ललनाओं, साहसी वीरों और गरिमामयी संस्कृति के इस क्षेत्र में दूर - दूर फैली अरावली की श्रृंखलाएं हैं, जो हरीतिमा में वैभव से पूर्ण है तो दूसरी ओर विराट मरूस्थल, मरू (रेत) के टीलों का अखण्ड साम्राज्य। उत्तर में गंगानगर से लेकर दक्षिण में डूंगरपुर, बाँसवाड़ा तक और पूर्व में अलवर, भरतपुर से लेकर पश्चिम में जैसलमेर तक फैला यह प्रदेश आकार में ही नहीं है, वरन प्राकृतिक सम्पदा, कलात्मक वैभव, रहन-सहन, वेश-भूषा, बोली-भाषा, धर्म दर्शन और साहित्य आदि इसे सांस्कृतिक दृष्टि से उच्चतम शिखर पर ले जाते हैं। आधुनिक राजस्थानी साहित्य के महान कवि कन्हैयालाल सेठिया ने लिखा है -

या तो सुरगा नै सरमावै, ई पर देव रमण नै आवै

ई रो जस नर-नारी गावे, धरती धोरां री, धरती वीरां री।

भाषा संस्कृति एवं साहित्य का मूल आधार होता है, सामाजिक एवं सांस्कृतिक समरसता के लिए भाषा एक प्रभावी माध्यम है इसलिए साहित्य के इतिहास लेखन में भाषा भी एक प्रमुख घटक है। राजस्थानी साहित्य को भलिभाँति समझने के लिए राजस्थानी भाषा का ज्ञान जरूरी है। राजस्थानी भाषा की उत्पत्ति शौरसेनी अपभ्रंश (गुर्जरी रूप) से मानी जाती है। राजस्थानी भाषा की प्रमुख बोलियाँ हैं, - मारवाडी-मेवाड़ी (पश्चिमी राजस्थानी), ढूँढाडी-हाड़ौती (पूर्वी राजस्थानी), मेवाती (उत्तरी राजस्थान), मालवी (दक्षिणी राजस्थान) इत्यादि। राजस्थान भाषा पहले मुडिया लिपि (महाजनी) में लिखी जाती थी अब यह देव नागरी लिपि में लिखी जाती है जिसमें ळ (ल) जैसे अक्षर भी मान्य है।

साहित्य इतिहास लेखन के लिए तत्कालीन युग, परिवेश, प्रवृत्तियाँ, भाषा, स्वयं का विवेक एवं अध्ययन, रचनाकार और उनकी कृतियाँ आदि विविध आधार होते हैं, साहित्य युगीन वातावरण से प्रभावित होता है अतः उसका अध्ययन भी युग विशेष और उसके सन्दर्भ में ही होना चाहिए। प्रस्तुत इकाई में इन सभी आधारों को ध्यान रखते हुए राजस्थानी साहित्य के इतिहास का काल विभाजन और नामकरण करने का प्रयास किया गया है। राजस्थान साहित्य के इतिहास का प्रमुखतः आदिकाल मध्यकाल और आधुनिक काल इन तीन भागों में बाँटा गया है। हिन्दी साहित्य के इतिहास के प्रथम काल के नामकरण एवं काल विभाजन में जिस प्रकार विद्वानों में मत विभिन्नता रही उसी तरह राजस्थानी साहित्य के इतिहास के इस प्रारम्भिक काल में रही। प्रो. नरोत्तम दास स्वामी इसका प्रारम्भ वि.सं. 1150 से मानते हैं तो हीरालाल माहेश्वरी वि.सं. 1100 से, सीताराम लालस वि.सं. 800 से और एल.पी. तैस्सीतरी सन् 1250 से। राजस्थान का आदिकालीन साहित्य अपने युग की सभी प्रवृत्तियों और काव्य शैलियों को समेटे हुए है। सिद्ध,

नाथ कवियों की वाणी जैन साहित्य, वीर शृंगार आदि विविध भावों को अभिव्यक्ति मिली है। आदिकालीन राजस्थानी साहित्य अपभ्रंश और गुजराती से प्रभावित रहा है। उस वक्त मरू-गुर्जर अपभ्रंश से निकली भाषा राजस्थानी और गुजराती दोनों ही थी। राजस्थानी साहित्य का मध्यकाल मुख्य रूप से 1450 से 1850 ई. तक माना जाता है। यह काल राजस्थानी भाषा और साहित्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण काल है। दक्षिण भारत से चलकर भक्ति भावना की जो लहर उत्तर में आलवार भक्तों के साथ आई उसमें सारा जन-मानस सराबोर हो गया था। भगवान राम और कृष्ण के लोकरक्षक ओर लोकरंजन रूप की अराधना और समृद्ध साहित्य रचा गया। जहाँ आदिकाल में युद्ध व शृंगार का स्वर प्रधान था, वहाँ मध्यकाल में वीर शृंगार के साथ-साथ भक्ति भावना की गूँज थी परन्तु आधुनिक काल के साहित्य में कविता और गद्य की विविध विधाओं का सुर दोनों कालों से भिन्न रहा था। 1857 का स्वतंत्रता संग्राम स्वतन्त्रता से पूर्व और पश्चात के परिवेश से इस काल में राष्ट्रीय चेतना, प्रगतिशीलता, हास्य व्यंग्य, समकालीन बोध की अभिव्यक्ति कविताओं और गद्य के विविध विधाओं में हुई है। राजस्थान साहित्य विशाल शब्द सम्पदा, मौलिक छन्द शास्त्र, काव्य शैलियों और काव्यशास्त्र के कारण विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

13.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययनोपरान्त आप:-

1. राजस्थानी साहित्य की जानकारी से पूर्व राजस्थान के भौगोलिक और सांस्कृतिक परिवेश को जान सकेंगे।
2. राजस्थानी भाषा के उद्गम, डिंगल-पिंगल रूप, लिपि और विविध बोलियों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
3. राजस्थानी साहित्येतिहास के नामकरण और कालविभाजन को समझ सकेंगे।
4. राजस्थानी साहित्य के आदिकाल, कालगत परिवेश और साहित्यिक प्रवृत्तियों (संवेदनागत और शिल्पगत) का अध्ययन कर सकेंगे।
5. मध्यकालीन राजस्थानी साहित्य के युग - परिवेश, साहित्यिक प्रवृत्तियों, प्रतिनिधि कवियों और रचनाओं की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
6. प्रमुख राजस्थानी साहित्यकारों और उनकी कृतियों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
7. राजस्थानी साहित्य के आधुनिक कालीन परिवेश, काव्य और गद्य की विविध विधाओं की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
8. आधुनिक काल की साहित्यिक प्रवृत्तियों का अध्ययन और विश्लेषण कर सकेंगे।
9. राजस्थानी साहित्य के इतिहास को सांगोपांग समझ सकेंगे।

13.3 राजस्थानी भाषा और बोलियाँ

भारत यूरोपीय (इण्डो यूरोपीय) भाषा परिवार की प्रमुख भाषा है राजस्थानी भाषा। यह राजस्थान और मालवा की मातृभाषा है। राजस्थानी भाषा का प्राचीन नाम मरूभाषा था। क्योंकि 8 वीं सदी में कुवलयमाला नामक ग्रन्थ में भारत की 18 भाषाओं में मरूदेश की भाषा का भी उल्लेख किया गया है। भारतीय आर्य भाषाओं के सबसे प्राचीन रूप को वैदिक संस्कृत कहा जाता है वैदिक से संस्कृत का विकास हुआ। संस्कृत से प्राकृत विकसित हुई। बुद्ध और महावीर के समय संस्कृत और प्राकृत में पर्याप्त अन्तर हो गया था। प्राकृत से अपभ्रंश का विकास हुआ। प्राकृत की भाँति अपभ्रंश में भी प्रान्तीय भेद रहै है। साहित्य में क्षेत्र में पश्चिमी अपभ्रंश की प्रधानता रही। राजस्थानी भाषा की उत्पत्ति शौरसेनी अपभ्रंश के (गुर्जरी रूप) से मानी जाती है।

13.3.1 डिंगल और पिंगल भाषा:

डिंगल और पिंगल राजस्थानी से भिन्न कोई भाषा नहीं है। दोनों राजस्थानी की ही एक काव्यगत शैली विशेष है। पश्चिमी राजस्थान, सौराष्ट्र, कच्छ आदि प्रदेशों में चारणों का जोर रहा और पूर्वी राजस्थान, ब्रजमण्डल आदि के पूर्व के क्षेत्रों में भाटों (ब्रह्मभट्टों)का प्रभुत्व। चारण और भाटों दोनों की रचनाएँ वीर रस प्रधान थी। चारण ने गीत शैली लेकर इस प्रदेश की भाषा राजस्थानी में काव्य रचना की तो भाटों ने पिंगल छंदों व पदों को लेकर ब्रजभाषा में काव्य रचना की साधारण बोलचाल की भाषा और इनकी रचनाओं की भाषा में कुछ अन्तर था चारणों की भाषा डिंगल भाटों की भाषा पिंगल नाम से अभिहित की गई। इसी प्रकार का मत डॉ. नामवरसिंह का भी है। वे यह मानते हैं कि पूर्वी राजस्थानी ब्रजभाषा से प्रभावित है, जबकि पश्चिमी राजस्थानी गुजराती से साम्य रखती हैं। राजस्थानी साहित्य में भी इन दो रूपों को अलग-अलग 'पिंगल' और 'डिंगल' के साहित्य में पहचाना जा सकता है। यहाँ पिंगल का अभिप्राय ब्रजभाषा से नहीं है, अपितु पूर्वी राजस्थानी के साहित्यिक रूप के नाम से है। इसी प्रकार डिंगल पश्चिमी राजस्थानी का साहित्य रूप थी। इधर कुछ विद्वानों द्वारा डिंगल को ही राजस्थानी भाषा का पर्याय माना जाने लगा है। यदि सोचने-समझने का तरीका यही रहा तो एक पूर्वी राजस्थानी इससे अलग हो जायेगी। चूँकि भाषा एक विकासमान व परिवर्तित सम्प्रत्यय है। आगे चलकर चारणों ने भी पिंगल को अपनाया। कवि सूर्यमल्ल के वंश भास्कर में पिंगल भाषा का अधिक प्रभाव है। वीर रसात्मक कविता में वीररस उपयोगी द्वित्व संयुक्तवर्णों ट, ठ वर्ण की आवृत्ति और समासयुक्त शब्दावली का प्रयोग विशेष होता था अतः डिंगल कवि प्राचीन शब्दालवली का प्रयोग और शब्दरूपों, वर्तनी को सर्वथा कभी नहीं छोड़ पाए, साथ ही साधारण बोलचाल की भाषा से डिंगल कवियों ने सम्बन्ध विच्छेद भी नहीं किया। अतः डिंगल की भी दो शैलियाँ बन गई प्रथम जो बोलचाल की भाषा से प्रभावित द्वितीय पिंगल से प्रभावित।

राजस्थानी साहित्य तीन शैलियों में लिखा गया प्रथम जैन शैली, द्वितीय चारण शैली और तृतीय लौकिक शैली। जैन शैली के लेखक प्रमुख जैन साधु और यति थे, अनेक प्राचीन शब्द और मुहावरे इस शैली में हैं और गुजराती का प्रभाव अधिक, चारण शैली के लेखक प्रधानतया

चारण और गौण रूप से अन्य समाज होता था। डिंगल वास्तव में अपभ्रंश का ही विकसित रूप हैं लेकिन लौकिक शैली अर्थात् लोक साहित्य में सदा ही अपने समय की जन भाषा का उपयोग किया गया। साधारण जनता का साहित्य इसी में रचा गया। डिंगल शब्द का प्रयोग कभी तो राजस्थानी की चारणी शैली के लिए और कभी समस्त राजस्थानी के लिए किया जाता है। इस सम्बन्ध में एक मत नहीं है।

13.3.2 राजस्थानी भाषा की लिपि (देवनागरी और मुड़िया लिपि)

(1) **देवनागरी लिपि:** देवनागरी लिपि को भारतीय संविधान में राजभाषा की लिपि के रूप में स्वीकार किया गया है। हिन्दी की तरह राजस्थानी भाषा की लिपि देवनागरी है। देवनागरी एक आदर्श लिपि है आदर्श लिपि के सभी गुण देवनागरी लिपि में पाये जाते हैं। इस लिपि की प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें जो बोला जाता है वही लिखा जाता है और जो लिखा जाता है वही बोला जाता है। समग्र ध्वनियों को संकेत करने की इसमें क्षमता है। और ध्वनि और संकेत में निश्चितता है। चूंकि आप हिन्दी साहित्य के विद्यार्थी हैं और इस लिपि का आपने पूर्व में अध्ययन कर लिया है इसलिए इसके बारे में विस्तार से लिखने की आवश्यकता नहीं है।

(2) **मुड़िया लिपि:** वैसे राजस्थानी भाषा की स्वयं की लिपि थी जिसे 'महाजनी', 'बणियावटी' लिपि का नाम दिया गया था। मुड़िया लिपि इसी को ही कहा गया है। देवनागरी लिपि की भांति यह लिपि भी बायें से दायें ओर लिखी जाती है। इसे लिखने का तरीका दूसरा है, वह यह है कि पृष्ठ पर सबसे पहले लाइन खींच ली जाती है फिर लिखने वाला अपनी बात लिखनी शुरू करता है तो वह अपनी कलम तभी उठाता है जब वह खींची गई लाइन पूरी हो। इससे अक्षरों में घसीट आ जाती है, कलम नहीं उठाने से अक्षर भी मुड़ जाते हैं। इस लिपि की एक ओर विशेषता यह है कि इसमें शब्दों को अलग-अलग नहीं लिखा जाता, वे लगातार एक ही क्रम में चलते हैं और वाक्य पूर्ण हो जाता है। पाठक को अपनी बुद्धि और विवेक से शब्दों को तोड़कर वाक्य को पढ़ना होता है। सामान्य पाठक इस लिपि को नहीं पढ़ सकता है। इसके इस स्वरूप का प्रयोजन संदेशों, वार्ताओं को गुप्त रखने का रहा हो पर धीरे-धीरे इसी रूप में साहित्य का सृजन भी होने लगा और इस लिपि को राजस्थानी लिपि के रूप में स्वीकार कर लिया गया। आज के समय में वणिक (व्यापारी) वर्ग अपने व्यापार पद्धति में भले ही इसका प्रयोग करते हों लेकिन राजस्थानी साहित्य का लेखन, मराठी, सिंधी, नेपाली और अन्य कई भारतीय भाषाओं की भांति देवनागरी लिपि में ही होता है।

13.3.3 राजस्थानी भाषा की बोलियाँ

(1) **मारवाड़ी:** पश्चिमी राजस्थानी की प्रधान बोली मारवाड़ी का प्रचार एवं प्रसार की दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्व है। 'मरूभाषा' नाम से अभिहित इस बोली का क्षेत्र पश्चिमी राजस्थान के जोधपुर, सीकर, नागौर, मेवाड़, बीकानेर, सिरोही, जैसलमेर आदि जिलों तक विस्तृत हैं इसकी अनेक उपबोलियाँ हैं। साहित्यिक मारवाड़ी को डिंगल कहा जाता है। विशुद्ध 'मारवाड़ी' जोधपुर में बोली जाती है। मारवाड़ी का साहित्य अत्यन्त समृद्ध है। ओज, भक्ति, वीर, नीति एवं लोक

साहित्य विषयक साहित्य का अपार एवं अथाह भण्डार है। 'वीर सतसई' एवं 'वेलि' वीर और शृंगारपरक साहित्य के अनूठे उदाहरण हैं। इसमें प्रचुर मात्रा में संत साहित्य भी प्राप्त होता है। इसमें सामान्यतः देवनागरी लिपि का प्रयोग किया जाता है, किन्तु बहीखातों में महाजनी लिपि का प्रयोग आज तक होता है।

(2) **मेवाड़ी:** मेवाड़ी, उदयपुर एवं उसके आसपास के मेवाड़ प्रदेश की बोली है। मेवाड़ी की अपनी साहित्यिक परम्परा अत्यंत प्राचीन है। कीर्तिस्तम्भ अभिलेखों से स्पष्ट होता है कि महाराणा कुम्भा (वि.सं. 1490-1525) द्वारा रचित चार नाटकों में मेवाड़ी का प्रयोग किया गया है। इसी प्रकार 'वेलि' की भी एक प्राचीन मेवाड़ी प्राप्त होती है।

(3) **बागड़ी:** डूंगरपुर एवं बाँसवाड़ा का सम्मिलित क्षेत्र 'बागड़' कहलाता है। यहाँ की बोली को ही बागड़ी कहा जाता है। उत्तर-पूर्व में इसका क्षेत्र बीकानेर ओर पंजाब की सीमा तक विस्तृत है। मेवाड़ के दक्षिण एवं संधू राज्य के उत्तर में तथा अरावली प्रदेश एवं मालवे की पहाड़ियों तक इसका विस्तार है। इसमें हिन्दी की भूतकालिक सहायक क्रिया 'था' के स्थान पर 'हतो' रूप प्रचलित है।

(4) **ढूँढाड़ी:** पूर्वी राजस्थानी के मध्यपूर्वी विभाग की प्रधान बोली जयपुरी या ढूँढाड़ी है। कोटपुतली/शाहपुरा/चिमनपुरा को छोड़कर पूरा जयपुर, किशनगढ़, टोंक, लावा एवं अजमेर मेरवाड़ा के पूर्वी अंचलों में यह बोली जाती है। दादूपंथ का अधिकांश साहित्य इसी बोली में लिपिबद्ध है। ढूँढाड़ी की प्रमुख बोलियों में हाड़ौती, किशनगढ़ी, तोरावाटी, राजावाटी, अजमेरी, चौरासी, नागरचोल आदि प्रमुख हैं।

(5) **हाड़ौती:** हाड़ौती का साहित्यिक महत्त्व भी है। कोटा-बून्दी क्षेत्र में प्रचलित हाड़ौती बोली का क्षेत्र ग्वालियर तक विस्तृत है। हाड़ौती पर प्रचीनकाल में हूणों एवं गुर्जरो के सम्पर्क का प्रभाव भी देखा जा सकता है। जयपुरी और हाड़ौती में विशेष अन्तर नहीं है। इसमें वर्तमानकाल के लिए 'छै' एवं भूतकाल के लिए 'छी', 'छो' का प्रयोग होता है। सर्वनाम के तिर्यक रूप एक वचन में ऊ, ई, दूरवाचक ओ, यो, वो तथा स्त्री रूप आ, या, वा का प्रयोग होता है। जब, कब के तब लिए जद तद, तथा कद रूपों का व्यवहार दृष्टव्य है।

(6) **मेवाती:** पूर्वोत्तरी राजस्थानी वर्ग में मेवाती बोली का विशेष महत्त्व है। यह मेवात क्षेत्र की बोली है। इस क्षेत्र को पूर्वकाल में मत्स्य जनपद कहा जाता था। इसकी सीमा हरियाणा के जिला गुड़गाँव की झिरका-फिरोजपुर, नूह तहसीलें तथा वल्लभगढ़ एवं पलवल के पश्चिमी भागों, उत्तर प्रदेश के कोसी, छाता तता मथुरा के पश्चिमी अंचलों एवं राजस्थान के जिला अलवर की किशनगढ़, तिजारा, रामगढ़ गोवन्दिगढ़, लक्ष्मणढ लहसीलों, जिला भरतपुर की कामा, डीग तथा नगर तहसीलों, के पश्चिमोत्तर तक विस्तृत है। उद्भव और विकास की दृष्टि से मेवाती पश्चिमी हिन्दी एवं राजस्थानी के मध्य सेतु का कार्य कर रही है। मेवाती में कर्मकारक में 'लू' विभक्ति एवं भूतकाल में हा, हो, ही, सहायक क्रिया का प्रयोग विशेष उल्लेखनीय हैं।

(7) **अहीरवाटी:** पूर्वोत्तरी राजस्थानी वर्ग की दूसरी महत्वपूर्ण बोली अहीरवाटी है। वस्तुतः अहीरवाटी बांगरू, (हरियाणवी) एवं मेवाती के मध्य संधिस्थल की बोली कही जा सकती है।

इसका क्षेत्र राजस्थान में जिला अलवर की तहसील बहरोड, मुण्डावर तथा किशनगढ़ का पश्चिमी भाग हरियाणा में जिला गुडगाँव की तहसील रीवाड़ी महेन्द्रगढ़ की तहसील नारनौल, जिला जयपुर की तहसील कोटपूतली का उत्तरी भाग तथा दिल्ली के दक्षिणी भाग तक विस्तृत है। प्राचीन काल में 'अभीर' जाति की एक पट्टी इस क्षेत्र में आबाद हो जाने से यह क्षेत्र अहीरवाटी या हीरवाल कहा जाने लगा है। इस बोली में पश्चिमी राजस्थानी के प्रभाव से 'न' का 'ण' बोला जाता है।

13.4 राजस्थानी साहित्य का इतिहास: नामकरण और काल विभाजन

आप सभी जानते हैं कि साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब होता है। समाज में विद्यमान परिवेश, संस्कृति, पृष्ठभूमि से साहित्य का लेखन प्रभावित होता है। किसी भी भाषा का साहित्य इतिहास, समाजगत पृष्ठभूमि व साहित्यिक प्रवृत्तियों के आधार पर किया जाता है। राजस्थानी साहित्य के इतिहास लेखन का आधार बना है:- एक युग में रचा साहित्य, साहित्य की विधाएँ, प्रवृत्तियाँ, युग का वातावरण, काव्यधाराएँ, रचनाकार और उनकी रचनाएँ। वीरता, भक्ति, नीति, प्रेम-शृंगार आदि राजस्थानी जन-जीवन की मूल भावनाएँ सदियों से रही हैं, यही कारण है कि सारा राजस्थानी साहित्य इन्हीं मूल भावनाओं में डूबता-उतरता रहता है। राजस्थानी साहित्य राजस्थानी जन-जीवन की संस्कृति और सभ्यता का चितेरा है।

राजस्थानी जग में प्रसिद्ध समृद्ध और स्वतंत्र भाषा है। ऐसा माना जाता है कि विक्रम की नवीं शताब्दी संवत् 835 में जब जैन कवि उद्योतन सूरि की अपनी पोथी में कुवलपमाला में उस समय की 18 देश भाषाओं में आज की राजस्थानी भाषा के लिए मसमासा रूप लिखा मिला तब से इसका साहित्येतिहास सामने आता है यथा ;

अप्पा तुप्पा भणिरै अह पेचछह मारूए (मरूभाषा) तत्तों

उपलब्ध साहित्य की दृष्टि से विक्रम संवत् 1200 के आसपास राजस्थानी प्राचीन जैन काव्य मिले हैं। शालिभद्र सूरि रचित 'भरतेश्वर बाहुबलिरास' का रचना काल सं. 1241 वि. है। प्रसिद्ध विद्वान सुनीति कुमार चटर्जी के मतानुसार राजस्थानी की उत्पत्ति नागर अपभ्रंश से हुई है। कवि जंबू स्वामी रचित 'स्थूल भद्र रास', इसी तरह 'वेवंतागिरि रास', 'आबूरास' इत्यादि से प्रमाण मिले हैं कि 13 वीं सदी में राजस्थानी भाषा ने विकसित होकर साहित्यिक रूप धारण कर लिया था विभिन्न विद्वानों के मतानुसार राजस्थानी साहित्य के इतिहास का कालविभाजन और नामकरण निम्नानुसार है

(1) आचार्य नरोत्तम दास के अनुसार

(अ) प्राचीन काल (सं. 1150 से 1550 तक)

(ब) मध्यमाल (सं. 1551 से 1875 तक)

(स) अर्वाचीन काल (सं. 1875 से निरन्तर)

(2) **डॉ. मोतीलाल मेनारिया:** डॉ मोतीलाल मेनारिया स्वयं के ग्रन्थ (पोथी) राजस्थानी भाषा का साहित्य में राजस्थानी साहित्य का विभाजन निम्नानुसार करते हैं -

(अ) प्रारम्भिक काल - संवत् 1045 से 1460

(ब) पूर्व मध्यकाल - संवत् 1461 से 1600

(स) उत्तर मध्यकाल - संवत् 1601 से 1900

(द) आधुनिक काल - संवत् 1900 से आज तक

(3) **डॉ. हीरालाल माहेश्वरी के अनुसार -**

(अ) प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी का आदिकाल संवत् 1100 से 1500 तक

(ब) प्राचीन पश्चिमी राजस्थानी से नवीन काल संवत् 1501 से निरन्तर

(4) **सीताराम लालस के अनुसार -**

(अ) आदिकाल - वि. संवत् 800 से 1460 तक

(ब) मध्यकाल - वि. संवत् 1461 से 1900 तक

(स) आधुनिक काल - वि. संवत् 1901 से निरन्तर

(5) **डॉ. कल्याण शेखावत के मतानुसार -**

(क) **आरम्भिक काल**

(अ) अभिलेखीय काल वि. की 8 वीं सदी से 12 वीं सदी तक

(ब) आदिकाल (वीरगाथा काल) वि. सं. 1201 से 1450 तक

(ख) **मध्यकाल**

(अ) पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल) - वि.सं. 1450 से 1650 तक

(ब) उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल) - वि.सं. 1651 से 1850 तक

आधुनिक काल -

(अ) पहला चरण - ई सन् 1851 से 1920 तक

(ब) दूसरा चरण - सन् 1921 से 1947 तक

(स) तीसरा चरण - सन् 1948 से आज तक

राजस्थानी भाषा के विकास क्रम में चार शैलियों के नमूने मिले हैं - जैन शैली, डिंगल शैली, पिंगल शैली, लौकिक शैली। डिंगल तो अपभ्रंश से ही विकसित हुई, पिंगल में राजस्थानी और ब्रज का मिला जुला रूप दिखता है। वास्तव में राजस्थानी का प्राचीन नाम मरूभाषा था जो 19 वीं सदी में डिंगल और पिंगल दो धाराओं में बँट गया। 19 वीं सदी में चारण कवि साइया झूला कृत 'नागदमण' ग्रन्थ डिंगल का नामी ग्रंथ है जिसमें दोनों काव्य भाषाओं का उल्लेख इस प्रकार है -

कालिया नाग में नाथण का वर्णन ‘

‘फुणा रा धणां रा हुवै फूतकारा।

उद्रे डींगल पींगल रा अंगारा।‘

इस प्रकार विभिन्न विद्वानों द्वारा राजस्थानी साहित्य के इतिहास का काल विभाजन किया गया है। जिस प्रकार से हिन्दी साहित्य के आदिकाल के नामकरण एवं काल विभाजन के सम्बन्ध में विविध मत दिखाई देते हैं उसी तरह राजस्थानी इतिहास में भी इस काल को लेकर मत वैभिन्य रहा है। राजस्थानी साहित्य के आदि काल में वीरगाथात्मक रासो साहित्य भरपूर लिखा गया और साथ ही साथ जैन साहित्य लौकिक साहित्य, चारण साहित्य, ब्राह्मणी साहित्य, लोक साहित्य की विविध धाराएँ प्रवाह मान रही अतः साहित्य के विविध रूपों को देखते हुए राजस्थानी साहित्येतिहास के प्रथम काल को 'आदिकाल' नामकरण किया जाना उचित ही है।

13.5 राजस्थानी साहित्य का आदिकाल (10वीं शदी से 14वीं शदी तक)

'आदि' का अर्थ है आरम्भ (प्रारम्भ), राजस्थानी साहित्य का प्रारम्भिक काल। यहाँ यह बात स्पष्ट करना जरूरी है कि आदिकाल की समय सीमा के बारे में विद्वान एक मत नहीं, बहुत से विद्वान 10 वीं शदी से राजस्थानी साहित्य की शुरुआत मानते हैं, परन्तु सीताराम लालस जैसे विद्वान वि.सं. 8 800 से ही राजस्थानी साहित्य का आदिकाल स्वीकार करते हैं। जैसा कि पहले भी उल्लेख किया जा चुका है कि 8 वीं शदी रचित उद्यातन सूरि के कथा ग्रन्थ कुवलयमाला में अठारह देश-भाषाओं के अन्तर्गत मरुदेश की भाषा का उल्लेख है। इन सभी विवादों से परे 10 वीं सदी से 14 वीं सदी तक के साहित्य को राजस्थानी साहित्य के आदिकाल के अन्तर्गत माना जाता है और आदिकाल की रचनाओं को भी आदिकाव्य कहा गया है।

13.5.1 आदिकाल और परिस्थितियाँ:-

(1) **राजनैतिक परिस्थितियाँ** - राजनीति से समाज, धर्म, संस्कृति, अर्थ इत्यादि से भी प्रभावित होते हैं। भारतीय साहित्य के अन्तर्गत आदिकाल राजनैतिक अस्थिरता का काल माना जाता है। इतिहासकारों की धारणा है कि सम्राट हर्षवर्धन के निधन (सन् 648) के पश्चात भारत की संपूर्ण स्थितियाँ बदली, राजाओं की आपसी लड़ाई, बैर-द्वेषभाव, जाँति पाँति और अन्य रूढ़ियों का लाभ उठाकर भारत में उत्तर पश्चिम सीमा से इस्लामी सैनिकों ने हमला प्रारम्भ किया। सन् 712 में मुहम्मद बिन कासिम, सन् 986 में सुबुक्तगीन, 1000 ई. में महमूद गजनवी, 1178 में मोहम्मद गौरी के हमले हुए। मोहम्मद बिन कासिम के हमले के समय राजस्थान में प्रतिहार, परमार चौहान और गहलोत राजपूतों ने विदेशियों से लड़ने की तैयारी की थी। 733 में बप्पा रावल ने चित्तौड़ पर कब्जा कर गहलोत शासन की नींव रखी थी, इसी वंश में आगे चलकर राणा कुंभा, राणा सांगा, महाराणा प्रताप जैसे शूरवीर हुए, जिन्होंने राजस्थान की कीर्ति पताका पहराई। इस समय भारत में केन्द्रीय शासन नाम की कोई चीज नहीं थी। राजस्थान, महाराष्ट्र और कर्नाटक में शक्तिशाली राज्य थे परन्तु महाराष्ट्र और कर्नाटक के राष्ट्रकूट राजाओं में निरन्तर झगडा चलता रहता था। सन् 1193 में तराईन के युद्ध में पृथ्वीराज चौहान के हार से सारी स्थितियाँ बदल गयी थी कुतबुद्दीन ऐबक से लेकर गुलाम वंश (1206 ई.), खिलजी वंश (1290

- 1320) और तुगलक वंश (1320-1414 ई.) इत्यादि वंशों ने देश में सिर्फ युद्ध व नाश का वातावरण बनाया।

इन आक्रमणकारियों का मुकाबला करने के लिए देशभक्त वीर वीरांगनाएं, उनके बच्चे सभी कूद पड़े। बाप ने बलिदान दिया तो बेटा मायड़भोम (मातृभूमि राजस्थान) के लिए स्वयं को अर्पण को तैयार मिला, इसी परिस्थिति में राजस्थानी साहित्य का आदिकाल विकसित होता रहा। वीरता और देशभक्ति के भाव जाग्रत करने हेतु वीरगाथाएं रची गईं।

(2) **सामाजिक परिस्थितियाँ** - जैसा राजा वैसी प्रजा के अनुसार सामाजिक स्थितियाँ भी निर्मित होत है, जातिपाँति वर्ण व्यवस्था, लूटपाट के माहौल के बीच सामंतशाही व्यवस्था में भी कई बुराईयाँ पनप रही थी। वीरता के साथ-साथ अहंकार और भोगविलास की प्रकृति भी जोर मार रही थी। इस्लामी आक्रमणों से सामान्यजन को ज्यादा नुकसान भोगना पड़ता था।

(3) **धार्मिक व सांस्कृतिक परिस्थितियाँ** - यह काल धार्मिक दृष्टि से संक्रमण काल रहा। बौद्ध और जैन धर्म में विभाजन हो गया। बौद्ध धर्म हीनयान, महायान, व्रजयान, सहजयान, मत्रयान इत्यादि कर्मकाण्डों में फैल चुका था। तंत्रमंत्र वाम मार्ग, जाप और अंधश्र्वास इत्यादि कार्यों से अकर्म पनप रहा था। इसमें शक नहीं है कि धार्मिक आचार्य धर्म के सच्चे स्वरूप को जनता के समक्ष रख रहे थे परन्तु निम्न वर्ग के लोग इन वामाचारों के कृत्यों फैल चुके थे। धर्म, आध्यात्म व संस्कृति के इस परिवेश ने आदिकालीन साहित्यिक परिवेश को अवश्य प्रभावित किया है। जिसका अध्ययन अगले बिन्दु में किया जा रहा है।

आदिकालीन साहित्य की विविध धाराएँ -

आदिकालीन साहित्य की पृष्ठभूमि का अभी आपने अध्ययन किया। साहित्यिक रचना अपने वातावरण से ही प्रभावित होती है। राजनीतिक सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक आपाधापी के युग में भी किसी न किसी तरह आदिकालीन साहित्य निम्नांकित विविध रूपों में दिखाई देता है -

(क) जैन साहित्य (ख) चारण साहित्य (ग) लौकिक साहित्य, (घ) गद्य साहित्य

(क) **जैन साहित्य** - जैन कवियों ने प्राकृत एवं अपभ्रंश भाषा में कई ग्रन्थों की रचना की। जिनप्रभ सूरि, शैलेन्द्र सूरि, धनपाल इत्यादि कविगणों ने राजस्थानी साहित्य के भंडार भरण में कोई कसर नहीं छोड़ी। जैन साहित्य, चरित्र काव्य, उत्सव, नीति काव्य और स्तुति काव्य इन चार रूपों में मिलता है। जैन साहित्य गद्य-पद्य रूप में रहा और साहित्य सदाचार, सहिष्णुता, त्याग, संयम आदि मुख्य विषय रहे। जैन कवियों श्रीराम और कृष्ण को नायक बनाकर अपने सिद्धान्तों का वर्णन किया। इन्हें धर्म और समाज दोनों का संरक्षण प्राप्त हुआ।

(ख) **चारण साहित्य** - चारण साहित्य में वीर और शृंगार रस प्रधानता है। चारण कवि योद्धा और लेखक दोनों ही रहे, इसलिए यह साहित्य वीरों के युद्धों और वीरता के बखान का साहित्य है। चारण कवि तलवार व लेखनी दोनों के धनी थे और विशेष बात यह है कि इसमें सुनी सुनाई कथाओं का वर्णन नहीं वरन् आँखों देखी जिन्दगी और मौत से जूझते युद्धों का वर्णन काव्य और

गद्य रूपों में देखने को मिलता है क्योंकि ये कवि युद्धभूमि जोश उत्पन्न करने के साथ-साथ खुद जूझते थे। कान्हड़दे प्रबन्ध में कान्हड़देव अलाउद्दीन के युद्ध का दृश्य देखिए -

डूंगर तणा शिशर डगमगइ, थयूँअजआल सायर लगइ।

अर्थात् डूंगर भी हिलने लगे और सागर भी उफनने लगा।

चारण शैली की सर्वप्रथम रचनाएं श्रीधर कृत 'रंगमल्ल छंद, चारण शिवदास कृत 'अचलदास खींची री वचनिका' अत्यन्त प्रसिद्ध है। इस शैली में वीररस व शृंगार प्रधान रासों काव्य लिखा गया जिसमें चंदबरदाई कृत 'पृथ्वीराज रासों', नरपति नाल्ह का बीसलदेव रासौ आदि प्रमुख है। वेलि परम्परा का पहला ग्रन्थ रांउलवेल इसी शैली में लिखा गया है जिसमें 46 पद्य है और छः नायिकाओं का नख शिख वर्णन है।

(ग) **लौकिक साहित्य** - लौकिक साहित्य जनमानस का साहित्य है, जनता की भाषा में लिखा गया है। राजस्थान में लोक साहित्य की विविध विधाओं में अनेकानेक विषयों तथा घटनाओं से सम्बन्धित लौकगीत, जनकाव्य लोकगाथा, लोकनृत्य, लौकनाट्य, लोक कहावते कथाएं सम्मिलित है। यह लोक साहित्य लोकमानस की मुखर एवं जीवन्त अभिव्यक्ति राजस्थान ढोला मारू रा दोहा प्रसिद्ध लोककाव्य है।

(घ) **गद्य साहित्य** - इस काल में राजस्थानी गद्य की शुरुआत हो चुकी थी, इसका स्वरूप अत्यन्त प्राचीन है। प्राचीन दानपत्रों, परवानों, वार्ताओं ऐतिहासिक अभिलेखों में गद्य का प्राचीन रूप संरक्षित है। राजस्थान में वात और ख्यात दोनों कीन्ही रूपों का उल्लेख मिलता है। वात कहानी को कहते हैं। इतिहास और वंश सम्बन्धित पोथियों को ख्यात कहते हैं। वात में ऐतिहासिक, धार्मिक, लौकिक रीति नीति सम्बन्धित कथाएँ, अलौकिक तत्वों व मनोविज्ञान के साथ उपस्थित होती है। लोक जीवन का सच्चा स्वरूप वात-साहित्य में नजर आता है।

13.5.2 आदिकालीन राजस्थानी साहित्य की प्रवृत्तियाँ

आदिकालीन राजस्थानी साहित्य में धार्मिक, लौकिक, वीरगाथात्मक और शृंगार परक चारण साहित्य आदि काव्यधाराएं देखने को मिलती है और साथ ही साथ गद्य का स्वरूप भी। भारतेश्वर बाहुबली रास (शालिभद्र सूरि), पृथ्वीराज रासौ (चन्दबरदायी), बीसलदेव रास (नरपति नाल्ह), ढोलामारू रा दोहा (लौकिक काव्य), अचलदास खींची री वचनिका (चारण कवि शिवदास गाडण), आदि इस काल की प्रतिनिधि रचनाएं हैं। अचलदास खींची री कथानिक गद्य-पद्य मिश्रित (चम्पूकाव्य) है।

13.5.2.1 विषयवस्तुगत (संवेदनागत) प्रवृत्तियाँ

आदिकालीन साहित्य की विषय वस्तु सम्बन्धित विशेषताएं निम्नांकित है -

(1) **वीरगाथात्मकता और शृंगारिकता**: इस काल के साहित्य में वीर रस और शृंगार रस का साथ-साथ और स्वतंत्र रूप से भी चित्रण हुआ है। चारण शैली की रचनाओं में इतिहास के साथ-साथ कल्पना का समावेश कर योद्धाओं की वीरता का बखान तो नायिकाओं के नखशिख का वर्णन भी किया है। पृथ्वीराज रासौ में वीर और शृंगार रस एक साथ चले हैं। 'इच्छिनी ब्याह'

‘शशिबाला ब्याह’ और ‘संयोगिता हरण’ इन तीनों अवसरों में युद्ध के साथ प्रेम प्रसंग का वर्णन है। कन्नौज युद्ध के समय स्वयं पृथ्वीराज संयोगिता के महल में मछलियों को मोती चुगा रहै है:-

भूलउं नृप तिहि रंग तहि जुद्ध विरूद्ध सहु।

मूंगति मीनन मुति लहंति लष्य दहु।

अर्थात् प्रेम रंग में राजा (पृथ्वीराज) युद्ध को भूल गए है। मछलियों के लिए वे मोती छोड़ते है तो दस लाख मछलियां उन्हें खाने के लिए दौड़ती है। सौन्दर्य का वर्णन इस महाकाव्य में मनभावन है। पद्मावती का सौन्दर्य देखिए:-

‘सेत वस्त्र सौहै सरीर नष स्वाति बूंद जसा।

भ्रमर भवति मुल्लहि खुमाव मकरंद वास रसा।’

अर्थात् पद्मावती श्वेत वस्त्र में सुशोभित है, उनका नख स्वाति बूंद जैसा उजला है, उनमें शरीर की खुशबू से भँवरे की रस लेने आते है और चारों तरफ चक्कर काट रहै है। ‘बीसलदेव रासो’ में वियोग शृंगार का वर्णन है। इसमें भोज परमार की बेटी राजमती और अजमेर के राजा बीसलदेव चौहान (तृतीय) के शादी केबाद वियोग होने पर राजमती के विरह की भावानुभूति का चित्रण है। राजमती के विरह वर्णन को बारह मासा चित्रण से भी बताया गया है। जैसे -

“फागुन फरहया कपिया रूष।

चमकि उनिसि नींद न भूष।”

अर्थात् फाल्गुन के महीने में हवा के तेज झोंके आते है; वृक्ष काँप रहै है। बिजली (बीजळी) की तरह मन चंचल है और नींद और भूख दोनों ही समाप्त हो गई है। इस काव्य में नारी जीवन की लाचारी, त्याग, बलिदान, कोमलता और विरह भावना को मार्मिकता के साथ चित्रित किया गया है। इसी तरह ‘ढोला मारू रा दूहा’ भी वियोग शृंगार से भरा पूरा है। मारवणी को जब ढोला व मालवणी के विवाह की सूचना मिलती है तो वह विरह में डूब जाती है और हवा से कहती है - जिणि दसे सज्जन बसइए, तिणि दिसि वज्जऊ वाउ।

उआं लागे मो लगासी ऊ ही लाख पसाऊ।

अर्थात् जिस देश मे मेरे साजन (भरतार) बसे है, है हवा! तू उसी दिशा में चल, क्योंकि उनको छूकर तू मुझे स्पर्श करेगी तो वह ही मेरे लिए लाख इनाम होगा। इसी तरह वह बादल से विनती करती है -

विज्जुलियं नीलज्जियां, जलहरि तू ही लज्जि।

सूनी सेज विदेश प्रिय मधुरइ मधुरइ गज्जि।

अर्थात् ये बिजलियाँ तो निर्लज्ज (बेशर्म) है, है बादल! तू ही लाज रखा मेरे प्रिय विदेश में है, मेरी तो सेज सूनी है, इसलिए तू धीरे-धीरे गर्जना कर। मारवणी के उजले सौन्दर्य का वर्णन इस प्रकार है -

गति गंगा मति सरसती सीता सील सभाई।

महिला सरहर मारूई, अवर न दूजी काई।

अर्थात् जिसकी गंगा के समान गति (चाल) है, सरस्वती जैसी बुद्धि और सीता के समान शील (शीतल) स्वभाव है, ऐसी महिला श्रेष्ठ मारवणी के समान कोई दूसरा नहीं है।

(2) आध्यात्मिकता नैतिकता - जैन कवियों द्वारा रचित साहित्य में आध्यात्मिकता व नैतिकता के दर्शन होते हैं। जैन कवियों ने हमेशा सादा जीवन उच्च विचार का आदर्श सामने रखा। इन कवियों ने प्रबन्ध और मुक्तक के माध्यम से नैतिक व आध्यात्मिक जीवन की सीख दी है। राजस्थानी काव्य के विकास में इन कवियों का उल्लेखनीय योगदान रहा है। हैमचन्द सूरि का 'शब्दानुशासन' और 'कुमार पाल चरित', सुप्रसिद्ध रचनाएं हैं। जैन कवियों ने तीर्थकरों की जीवनियाँ, सन्यास, धर्म, त्याग, अहिंसा आदि का वर्णन किया है। यह सही है कि जैन कवियों ने अपनी पोथियों और पाण्डुलिपियों को सुरक्षित रखने का हर संभव प्रयास किया था, इसलिए आदिकालीन भारत का सांस्कृतिक इतिहास भाषा विकास की जानकारी इन ग्रन्थों में उपलब्ध है। आदिकालीन राजस्थानी भाषा विकास की जानकारी इन ग्रन्थों में मिलती है।

ऐतिहासिकता: जैन कवियों ने सिर्फ नैतिकता आध्यात्मिकता का वर्णन ही नहीं किया वरन् ऐतिहासिक काव्य की रचना भी करी। हैमचन्द कृत, 'कुमारपाल चरित', सोम प्रेम सूरि कृत 'कुमारपाल प्रतिबोध', धर्मसूरि कृत 'जम्बू स्वामी रास', ईश्वर सूरि कृत 'ललितांग चांित', विजय सेन सूरि का रेवतगिरि रास इत्यादि काव्य में इतिहास की घटनाओं का सही रूप में चित्रित किया गया है।

डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कहा है "राज्यश्रय, धर्माश्रय और लोकाश्रय इन तीनों कारणों से साहित्य सुरक्षित रहता है।" जैन कवियों के ग्रन्थ (पोथियाँ) भी धर्मश्रय के कारण नष्ट नहीं हो सके, और इसकी रचनाएँ प्रमाणिक रह सकीं। चारण ग्रन्थ 'अचलदास खींची री वचनिका' में भी इतिहास की पूरी रक्षा मानी जाती है। यद्यपि यह वीररस प्रधान रचना है और गद्य पद्य मय शैली में लिखी अचलदास और मांडू के सुलतान हुशंग गौरी के युद्ध का वर्णन है। चारण शैली की इस ऐतिहासिक रचना का साहित्य में ऊँचा स्थान है।

13.5.2.2 भाषा एवं शिल्पगत प्रवृत्तियाँ

(1) **भाषा:** आदिकालीन राजस्थानी साहित्य में काव्य रचना तीन भाषाओं में होती थी 1. अपभ्रंश से प्रभावित राजस्थानी, 2. डिंगल भाषा और 3. पिंगल। जैन, कवियों सिद्ध नाथ कवियों की रचनाओं में अपभ्रंश मिश्रित राजस्थानी भाषा का रूप देखने को मिलता है जिसके कई उदाहरण हमने पहले के बिन्दुओं में पढ़ लिए हैं।

डिंगल प्राचीन राजस्थानी की शैली है। इसका प्रयोग अधिकतर चारण कवियों द्वारा किया गया। कहा जाता है कि डिंगल शब्द का प्रयोग कविराजा बांकीदास द्वारा किया गया तब से यह शब्द मारवाड़ी साहित्य के लिए काम में लिया जाने लगा। डिंगल पिंगल से भी प्राचीन भाषा है। डिंगल ओजपूर्ण काव्य की भाषा जिसमें युद्ध के सजीव वर्णन के साथ-साथ वीर और श्रृंगार का वर्णन भी विविध काव्य रूपों में हुआ है। पिंगल, मधुरस और प्रसाद गुण से युक्त भाषा है। पिंगल का एक अर्थ छंदशास्त्र भी है, राजस्थान में डिंगल और पिंगल दोनों में साहित्य रचा गया है।

- (2) **काव्य रूप:** डिंगल के काव्य रूपों में रास, रासौ और वचनिका प्रमुख है। जैन कवियों ने रास के रूप में तो चारण कवियों ने रासौ रूप में प्रबन्ध काव्य लिखे और वचनिकाएँ भी लिखी है। पिंगल भाषा के प्रभाव से इस काल में कई छन्द सामने आए, दूहा (दोहा), वेल, नीसाणी, चौपाई, छप्पय वेल, कवित्त, सवैया, सोरठा, रोला आदि छन्दों का प्रयोग पृथ्वीराज रासौ और अन्य ग्रन्थों में हुआ। छन्दों के नाम से भी रचनाएँ हुईं जैसे - 'राउलवेल', 'नीसाणी विवेक वारता' और 'ढोला मारू रा दोहा' इत्यादि। नीति सम्बन्धित दोहों की भी प्रचुरता थी जैसे - हंस गया, सारस गया, बुगला गया विलाया सम्मन अब इण रूख पर, कागा बैठा आया।
- (3) **शैली:** यह साहित्य तीन विभिन्न शैलियों में लिखा हुआ है - 1. जैन शैली, 2. चारण शैली और, 3. लौकिक शैली। गद्य-पद्य शैली (चम्पू काव्य) 'अचलदास री की वचनिका' नामक ग्रन्थ में विद्यमान है। कथात्मक शैली में कथानक रूढ़ियों जैसे शुक शुकु की संवाद, हंस-कबूतर जैसे संदेश भिजवाना, आकाशवाणी बारहमासा आदि प्रयुक्त होती रही।
- (4) **गेयता:** राजस्थानी साहित्य में गीतित्व भी विद्यमान है। रास काव्य रूप में इसकी प्रधानता है। पृथ्वीराज रासौ, 'बीसलदेव रास', 'ढोलामारू रा दोहा' आदि ग्रन्थ इसके उदाहरण हैं।

13.6 राजस्थानी साहित्य का मध्यकाल (सन् 1450 से 1850 तक)

राजस्थानी साहित्य का मध्यकाल सामान्यतः 1450 से 1850 तक माना जाता है। इस संदर्भ में भी विद्वानों में एक मत नहीं है। कई विद्वान इसका प्रारम्भ 1350 ई. से मानते हैं तो कई विद्वान महाराणा सांगा के खानवा युद्ध (1527 ई) में हार से मध्यकाल का प्रारम्भ मानते हैं। सामान्यतः मध्यकाल 14 वीं सदी से 19 वीं सदी के मध्य तक माना जा सकता है। राजस्थानी भाषा और साहित्य दोनों ही दृष्टि से मध्यकाल अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा। इस काल में राजस्थानी भाषा का स्वरूप निखरा। शौरसेनी अपभ्रंश के मारू गुर्जर स्वरूप से राजस्थानी और गुजराती अलग-अलग भाषाएँ बनीं। राजस्थानी साहित्य का यह काल भक्ति से सरोबोर रहा।

हिन्दी साहित्य के मध्यकाल को दो भागों में 1. भक्तिकाल (सं. 1375 से 1700 तक) और रीतिकाल (संवत् 1700 से 1900 तक) बाँटा गया है परन्तु राजस्थान का मध्यकाल (सं. 1450 से 1850 तक) दोनों कालों की विशेषताओं को साथ लेकर चला है। कथ्य और भाषा शैली की दृष्टि से इस साहित्य का योगदान उल्लेखनीय रहा।

13.6.1 मध्यकालीन राजस्थानी साहित्य का परिवेश

इस काल की साहित्यिक प्रवृत्तियों और काव्य धाराओं की जानकारी से पूर्व इस की परिस्थितियों को समझना आवश्यक है, जो निम्नानुसार है -

- (1) **राजनीतिक परिवेश:** कहा जाता है कि खानवा के युद्ध (वि.सं. 1584 ई.) में राणा सांगा की बाबर से हार ने राजस्थान का ही नहीं, भारत का इतिहास बदल दिया। डॉ. रघुवीर सिंह

आधुनिक राजस्थान नाकम ग्रन्थ में लिखते हैं कि राणा सांगा की हार से जनता की सोच बदल गई। हिन्दू जनता निराशा, भय और आत्म ग्लानि को दूर करने के लिए भक्ति की ओर मुड़ गई। भक्तों और संतों ने इस संकट बेला को टालने के लिए भक्ति साहित्य रचना शुरू किया।

राजस्थान में आदिकाल में गहलोत राजवंश का प्रभाव था परन्तु मध्यकाल में सिसोदिया राजवंश का प्रभाव बढ़ गया था। मुगल साम्राज्य की स्थापना, उसका विकास, अंग्रेजी शासन के बीच और राजपूतों से सम्बन्ध यह सभी मध्यकाल में नये युग व हलचल की ओर संकेत है। जोधपुर में रावजोधा और बीकानेर में राव बीका ने शासन शुरू किया था। अन्ततः राजस्थान की रियासतों को पहले मुगलों से और बाद में अंग्रेजों से संधि करनी पड़ी। वैभव विलासित और विभूत सामंतशाही के कारण यह सब हुआ।

(2) **सामाजिक परिवेश:** इस्लाम धर्म के पश्चात् सामाजिक स्थितियाँ भी बदली। जाति पाँति, छूआछूत, पर्दाप्रथा आदि कुप्रथाओं का जोर बढ़ता गया, हताश ग्रस्त जनता को संतों के माध्यम से भगवत भक्ति व नैतिक मूल्यों का संदेश मिला। भक्ति धारा के प्रबल वेग के कारण इस काल में संत साहित्य और सगुण (राम कृष्ण) काव्य की रचनाएँ प्रकट हुईं। मुगलशासन में स्थिरता के विकास के पश्चात् वैभव विलासिता जोर पकड़ने लगी, आश्रयदाताओं की प्रशंसा हेतु लक्षण ग्रन्थ और शृंगारिक रचनाओं का सृजन होने लगा और रीति काव्य परम्परा के रूप में उपस्थित हुआ।

समाज ऊँचा व निम्न दो भागों में बँटा हुआ था। समाज में व्यापारी (वर्णिक) वर्ग का दबदबा था। व्यापारी जमींदार और ठाकुरों तक को कर्जा देता था तो दूसरी ओर निम्न वर्ग भूखमरी, बेरोजगारी, पेट भरने के लिए भटकता रहता था।

(3) **धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिवेश:** धर्म, राजनीति और समाज के मेलजोल का असर संस्कृति पर होता है। राजस्थान की सभ्यता व संस्कृति की पहचान निराली ही हैं बड़े गढ, मोटी मोटी हवेलियाँ, मन्दिर स्थापत्यकला, मूर्तिकला, चित्रकला, नृत्यकला में विकास और परिवर्तन मध्यकाल में देखने को मिलता है। मध्यकाल में जब बदलाव की बीन बजनी शुरू हुई तब राजस्थान के समाज और संस्कृति पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा। हिन्दू धर्म पर होने वाले आक्रमणों से मनुष्य की आस्था लड़खड़ाने लगी थी राजपरिवारों में विभाजन होने लगा था, सभ्यता व संस्कृति पर मुस्लिम और विदेशी शैली का प्रभाव दीखने लगा था। शैव, वैष्णव और शाक्त धर्मों का प्रचलन वर्षों से चलता रहा है, परन्तु पाखण्ड और अनाचार भी साथ में बढ़ते गए। इसी बीच मध्यकाल में भक्ति की दो धाराएँ शुरू हुई - निर्गुण भक्ति और सगुण भक्ति। मुगलों के अधिकार से मुस्लिम धर्म का भी फैलाव हुआ।

राजस्थानी साहित्य का स्वर्णयुग भी मध्यकाल ही माना जाता है। इस काल के मध्य भक्ति साहित्य के सगुण भक्त उपासक राम-कृष्ण को अपना आराध्य, ईश्वर के नाना विध स्वरूपों का बखान करते हैं। इधर निर्गुण उपासक संत पथ के लिए लेखनी चला रहे थे, संतों, विद्वानों के कारण सद व्यवहार, सदाचरण, सील, संयम, आत्मसंतोष जनता के मध्य विद्यमान रहा। इस काल में राजस्थानी समाज में नया जागरण नारी के प्रति श्रद्धा और प्रेमभाव, सदाशयता, ब्रह्म की

सत्ता की व्यापकता के कारण भक्ति की शक्ति बढ़ गई। भक्ति की शक्ति से जनमानस में शान्ति, सुरक्षा और आनंद का अनुभव होने लगा था।

13.6.2 मध्यकाल के प्रतिनिधि कवि और रचनाएँ

इस काल में मीराबाई, राठौड़ पृथ्वीराज, ईसरदास, दुरसा भाड़ा, बांकीदास, कृपाराम, छंद राव जैत सी जैसे ख्यातनाम प्रतिनिधि कवि हुए जिनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है -

(1) **मीराबाई:** मेड़ता प्रदेश के राव दूदा की पोती और रतन सिंह की बेटी मीराबाई बचपन से ही कृष्ण भक्ति में लीन थी। उनका विवाह मेवाड़ के राणा सांगा के बेटे भोजराज से हुआ जो अल्पायु में ही मारा गया था। मीरा बाई में कृष्ण भक्ति, नारी वियोग और कृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम सम्बन्धित कई पदों का सृजन किया। मीरा सगुण भक्ति के साथ-साथ निर्गुण भक्ति भावना से जुड़ी रही, परन्तु सगुण साकार ईश्वर की परम भक्त रही जैसे -

म्हारा तो गिरधर गोपाल दूसरा ना कोई
दूसरा ना कोई साधां सकल लोक जोई

मीरां कृष्ण प्रेम की दीवानी थी, मीरां काव्य में समाज की दूर्दशा और वेदनानुभूति और दर्द का सजीव चित्रण हुआ है -

हैरी म्हासूं हरि बिन रह्यो न जाया।
सास लडै ए मेरी नन्द खिजावै, राणा रह्या खिजाया।
पहरो भी राख्यों, चौकी बिठारयो, ताला दियो जड़ाया।
पूर्व जनम की प्रीत पुराणी, सो क्यू छोड़ी जाया।

मीरां के प्रभु गिरधर नागर, अवरू न आवै म्हारी दाय।

मीरां की भाषा के सम्बन्ध में डॉ. भूपतिराम साकारिया लिखते हैं कि “मीरा के पद राजस्थानी में है। स्पष्ट बात तो यह है कि मीरा ने मातृभाषा के किसी दूसरी भाषा में पदों की रचना नहीं की। अपने भावों के महत्व के कारण राजस्थानी के कुछ कवि सम्पूर्ण भारत के हो गई जैसे कि मीरा बाई। वैसे मीरा बाई के पदों में हिन्दी, डिंगल, पिंगल, ब्रज, संस्कृत, सुधक्कड़ी आदि मिश्रित भाषाओं का प्रयोग हुआ है।”

(2) **राठौड़ पृथ्वीराज:** मध्यकालीन राजस्थान के सर्वश्रेष्ठ कवियों में प्रमुख राठौड़ पृथ्वीराज की डिंगल शैली में लिखि काव्य कृति ‘क्रिसन रूकमणी री वेली’ अत्यन्त महत्वपूर्ण रचना है। बीकानेर नरेश रावकल्याण के सुपुत्र राठौड़ पृथ्वीराज का जन्म राठौड़ राजवंश में सन् 1543 में हुआ था। इनके बड़े भाई महाराजा रायसिंह अकबर के प्रमुख सेनापति थे और दानवीरता के लिए प्रसिद्ध थे। स्वयं राठौड़ पृथ्वीराज अकबरी दरबार के नौ रत्नों में से एक थे। पृथ्वीराज बहुमुखी प्रतिभा के धनी वीर होने के साथ भक्त और प्रथम श्रेणी के कवि थे। उनके समकालीन कविवर नाभजी ने ‘भक्तमाल’ में उनका उल्लेख किया है जो इस प्रकार है -

“सवया गीत सलोक वेलि दोहा गुण नव रस

पिंगल काव्य प्रमाण विविध विधि गायों हरिजान

रुकमणी लता वरणन अनुप वागीस वदन कल्याण-सुव

नर - देव उभै-भाषा निपुण, पृथ्वीराज कवि-राज हुवा“ (भक्तमाल)

राठौड पृथ्वीराज ने ‘क्रिसन-रुकमणी री वेलि’ के अतिरिक्त ‘ठाकुरजी रा दूहा’, ‘गंगा जी दूहा’, ‘महाराणा प्रताप रा दूहा’, ‘विठ्ठला रा दूहा’, राधाकृष्ण का नख-शिख श्रृंगार वर्णन इत्यादि रचनाएँ लिखी परन्तु सर्वाधिक उनकी ख्याति क्रिसन-रुकमणी की वेलि से हुई। राजस्थानी इतिहास के प्रसिद्ध लेखक कर्नल टॉड और राजस्थानी भाषा और साहित्य के महापंडित डाक्टर तैसीतोरी जैसे विद्वानों ने भी इस रचना को डिंगल काव्य की सर्वश्रेष्ठ रचना बताया है और तैसीतोरी ने तो इसके रचना राजस्थानी साहित्य का सबसे जगमगाता रत्न कहा है। मोतीलाल मेनारिया ने लिखा है “काव्य-सौष्टव, अलंकार चातुर्य, भाव गाम्भीर्य, भाषा लालित्य, अर्थ गौरव आदि सभी दृष्टि से ‘क्रिसन-रुकमणी री वेलि’ ग्रन्थ अनूठा है। वेलि के कथानक में सरसता, उनकी कवित में कोमलता, उनके प्राकृतिक वर्णन में कल्पना की कमनीयता, उसकी भाषा में प्रांजलता एवं भावों में मौलिकता है।” वेलि मूल रूप से प्रबंध काव्य है और क्रिसन-रुकमणी के ब्याह का वर्णन है। भागवत से कथासूत्र ग्रहण कर कवि ने रुकमणी का सौन्दर्य-चित्रण, रुकमणी-सन्देश, प्रकृति वर्णन और युद्ध वर्णन में अनूठा काव्य सौन्दर्य भरा है। वसंत रूपी बालक का सुन्दर चित्रण दृष्टव्य है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की पहचान, पूर्वावर संबंध निर्वाह और स्थानीयता ये तीनों वेलि के कथानक में विद्यमान हैं।

वसंत रूपी बालक का सुन्दर चित्रण दृष्टव्य है -

विधि सेणी वधावे वसंत वधायउ

भालिम दिनि दिनि वढ़ भरणा।

हुळरावणे फागि हुळराय

तरू गहवरिया थिय तरूणा।

अर्थात् इस विधि से वसंत रूपी बच्चों को बधावो (गीतों) से बधाया गया। इसकी सुन्दरता दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगी। उसको फाग रूपी लोरियों से दुलारा गया और फाग की ठण्डी-हावाएँ उसे लोरियाँ सुना-सुना कर दुलराती गईं। फिर धीरे-धीरे वृक्ष हरे-भरे और सघन हो गए। ऐसा प्रतीत होता है कि वसंत रूपी बच्चा जवान हो गया है। इस वेलि में भक्ति, श्रृंगार और रस तीनों का सुन्दर (फूठारा) वर्णन है।

(3) **ईसरदास:** मध्यकालीन राजस्थानी साहित्य में वीर और भक्ति रस के प्रमुख कवि ईसरदास का नाम अत्यन्त आदर के साथ लिया जाता है। वीर रस प्रधान इनकी प्रमुख कृति है - “हालां-झालां री कुण्डलियां” जिसमें ध्रागंधा नरेश झाला रायसिंह और, ध्रोत राज्य के हाला जसवंत सिंह के युद्ध का वर्णन है। भक्तिरस की रचनाओं में उनकी प्रमुख कृति है ‘हरिरस घणी’ जिनका पाठ आज भी गुजरात और राजस्थान में बहुत से व्यक्ति करते हैं। यह एक मुक्तम काव्य है।

(4) **दुरसा आढ़ा:** मध्यकाल के कवि दुरसा आढ़ा कवि के साथ एक योद्धा के रूप में भी प्रसिद्ध रहे। राजस्थानी की जनता को जागरण का संदेश दिया। दूरसा जी की रचनाओं में ‘विरूद्ध

छिहतरि', 'राव सुरताण रा झूलणा', 'राव अमरसिंह रा झूलणा', 'दूहा सोलंकी' 'वीरमदे रा किरतार बावनी' आदि प्रमुख है। 'विरूद्ध छिहतरि' में महाराणा प्रताप का गुणगान है उदाहरणार्थ-

“अकबर समंद अथाह, तिंह डूबा हिन्दूतुरका

मेवाडी तिण माह, पोयण फूल प्रताप सी”।

अर्थात् अकबर के साम्राज्य रूपी समुद्र में हिन्दू तुर्क सब डूब गए लेकिन उसके भीतर मेवाड़ी महाराणा प्रताप फूल के समान तैर रहे है। यहाँ प्रताप की वीरता, स्वाभीमान और स्वातंत्र्य भाव का उल्लेख हुआ है।

(5) **छंद राउ जैतसी रो:** कवि बीडू सूजई रउ द्वारा रचित 'छंद राउ जैतसी रो' एक वीर रसात्मक काव्य रचना है। जिसमें बीकानेर नरेश राव जैतसी के धरती प्रेम, वीर भावना, धर्म की रक्षा, साथ में अध्यात्मक भक्ति का सौन्दर्य भी विद्यमान है। इस ऐतिहासिक काव्य को सर्वप्रथम तैसीतरी द्वारा ई संवत् 1629 की हस्तलिखित प्रति के आधार पर सम्पादित किया गया। भाषा शैली की दृष्टि से यह डिंगल की अद्भुत रचना है। अपभ्रंश के प्रभाव के साथ तत्सम, तद्भव, देशज और अरबी-फारसी के शब्द भी विद्यमान है। अलंकार व छंद की वयणसगाई का अनूठा प्रयोग कवि ने किया है। इस काव्य की खास घटना है - रावजैतसी को बाबर पुत्र कामरान के विरूद्ध जीत।

(6) **कृपाराम खिडिया:** कृपाराम खिडिया सीकर के राजा देवी सिंह के आश्रयदाता कवि थे। इनकी लोकप्रियता का मुख्य आधार रहा 'राजिया रा दूहा' कृति। राजिया इनमें चाकर और कोई पुत्र न होने के कारण अत्यन्त दुखी रहते थे। दुख कम करने के लिए कृपाराम राजिया को सम्बोधित करके दोहै करते थे जिसमें जीवन के आचार विचार, रीति नीति का स्पष्ट चित्रण होता था। आज कृपाराम को राजिया रा दूहा के कारण याद किया जाता है, उदाहरणार्थ -

दाम न होय उदास, मतलब गुण गाहक मिनख

ओखद री कड़वास, रोगी गिणे न राजिया।

यहाँ स्वार्थी मनुष्य के लिए व्यंग्य करते हुए कवि कहते हैं कि मतलबी मनुष्य का कोई स्वाभिमान नहीं जिस तरह रोगी रोग को दूर करने के लिए दवा की कड़वास भी पचा जाता है उसी तरह मतलबी मनुष्य भी किसी बात का बुरा नहीं मानता है। सरल, सीधी डिंगल में लिखे ये दोहै व्यावहारिक जीवन की बात बताते हैं और आज भी प्रासंगिक है।

(7) **माधवदास दधवाडिया:** माधवदास दधवाडियाँ कृत 'रामरासौ' एक कालजयी महाकाव्य है। माधवदास का जन्म वि. सं. 1615 के आसपास माना जाता है। इनके पिता का नाम चूंडा दधवाडिया और माता का नाम चन्द्रावल वरसड़ा था। इनके पूर्वज देवल गौत्र के चारण थे, मारवाड़ के रूण ठिकाने के राजकवि थे और उन्हें दधवाड़ा नामक ग्राम जागीर में मिला था, इसी कारण ये देवल दधवाडिया कहलाए।

माधवदास दधवाडिया बहुमुखी प्रतिभा के धनी थी। काव्यशास्त्र, संगीत, व्याकरण, छंद अलंकार, इतिहास, ज्योतिष, तंत्रविद्या, भाषाओं के ज्ञाता थे। कृष्ण के अनन्य उपासक करमानन्द उनके आध्यात्मिक गुरु थे, जिनके मार्गदर्शन से इन्होंने वाल्मीकि रामायण, भागवत, महाभारत, पुराण आदि धर्म ग्रन्थों का अध्ययन किया। साहित्य साधना के पथ पर अग्रसर होते हुए माधवदास ने जो रचनाएँ की उनमें राम रासौ एक उत्कृष्टतम कृति है। यह भक्ति और वीर रस से भरपूर है। इस साहित्यिक रचना के लिए जोधपुर के तात्कालीन महाराज सूरज सिंह ने संवत् 1654 में सोजन परगने का नापावास ग्राम जागीर में प्रदान कर सम्मानित किया था। माधवदास की ईश्वर के प्रति निष्काम भक्ति भाव व अडिग आस्था रही।

राजस्थानी साहित्य में मनुष्य जन्म की सार्थकता स्वामिभक्ति, कष्ट-सहिष्णुता, उदारता, वीरता, धरतीप्रेम, जाक्षीय गौरव, वीरगति का मोह, धर्म में आस्था, कर्तव्य परायण, वचन बद्धता आदि आदर्शों के निर्वाह में निहित मानी गई है। इन सभी का उल्लेख 'रामरासौ' कृति में होता है, इसीलिए यह कालजयी रचना हो सकी है।

(8) **बांकीदास** (1781 - 1833 ई. तक): कवि बांकीदास ने राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत रचनाएँ लिखीं। उन्होंने हिन्दू मुस्लिम संस्कृति की एकता को बढ़ावा दिया और अंग्रेजी शासन से जूझने के लिए वाणी दी। इस दृष्टि से आधुनिकता का पहला स्वर बांकीदास के काव्य में मिलता है -

“आयो इंगरेज मुलकरै, ऊपर आहंस लीधा खैचि उरां।

छागियां मरैन दीधी धरती, धणिया, ऊभां गई धरा॥“

बांकीदास की रचनाएँ बांकीदास ग्रंथावली में संकलित हैं। ख्यात साहित्य में 'बांकीदास री ख्यात' इतिहास की दृष्टि से महत्वपूर्ण गद्य रचना है।

13.6.3 मध्यकालीन राजस्थानी साहित्य की प्रवृत्तियाँ

13.6.3.1 विषयवस्तु (भावगत-प्रवृत्तियाँ):-

इस काल में भी विषय वस्तु की विविधता विद्यमान रही है यद्यपि मध्यकाल भक्ति साहित्य से सराबोर रहा तथापि चारण साहित्य, जैन साहित्य, गद्य साहित्य, लोक साहित्य और लक्षण ग्रन्थों की भी रचना बराबर होती रही -

(1) **चारण (ऐतिहास) काव्य:** आदिकाल की तरह मध्यकाल में भी चारण काव्य की काफी रचनाएँ सामने आईं। इन रचनाओं से तत्कालीन इतिहास, समाज और संस्कृति का चित्रण मिलता है। राजपूतो के शौर्य व वीरता का चित्रण डिंगल-पिंगल शैली में विद्यमान है। पसाइन राव रिणम कृत 'गुण जोधायण', 'रावरणमल के दोहै', भांडु व्यास कृत 'हम्मीरायण' सूजा जी बीलू कृत 'राव जैतसी रो छंद', बारठ आसोजी कृत 'भटियाणी उमादे रा व्यक्ति', ईसरदास कृत 'हालाझाला री कुण्डलियाँ', दुरसा आढा कृत 'किरतार बावणी' और 'विरूद्ध छिहतरी', जोधराज कृत 'हम्मीद रासौ' आदि उल्लेखनीय हैं।

(2) **भक्तिकाव्य:** इस काल में तत्कालीन देश में चारों ओर भक्ति आन्दोलन का प्रभाव दिखाई देता है। निर्गुण और सगुण भक्ति की भावना मध्यकालीन राजस्थानी साहित्य की प्रमुख प्रवृत्ति के रूप में सामने आई। राजस्थान में वीर रसात्मक काव्य के साथ पौराणिक, धार्मिक भक्ति काव्य रचनाओं की भी प्रचुरता है। इस काल में भक्ति काव्य की दो धाराएं विद्यमान रही।

(क) निर्गुण भक्तिकाव्य धारा

(ख) सगुण भक्ति काव्य धारा

(क) निर्गुण भक्तिकाव्य: साहित्य में निर्गुण भक्ति काव्य धारा का प्रवर्तन राजस्थान संत कवियों ने किया। संतो ने अपनी वाणियों के माध्यम से जाति-पाँति, ऊँच नीच, छूआ छूत, पाखण्ड, बाह्य आडम्बर आदि का विरोध कर जन-समाज को शांति और भाईचारे का संदेश दिया। दादू की वाणी है -

“दादू देखा दयाल की, एकल रहा भरपूर।

रोम-रोम में बसि रइयो, तू जिनि जाने दूर।।”

संतो ने नामस्मरण, गुरु की महिमा, सत्संग की महिमा, नैतिक मूल्यों, अहंकार और मन के विकारों के त्याग, रहस्य भावना पर जोर दिया। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं -
उदाहरण इस प्रकार है -

(1) ‘आपो मेटै, हरि भजै, तन-मन तजै विकार

निखैरी सब जीव सूं, दादू यह मत सारा।’ (अहंकार का त्याग - संत दादूदयाल)

(2) लालजी साहिब सत गुरु एक है, यामें संसय नाहिं
सतगुरु बिन पावै नहीं, ज्ञान, ध्यान की राह।

(सतगुरु की महिमा, संत लालदास)

(3) हिन्दू तुरह है दोउन का, येकहि राम रहीम खुदाजी

(नाम-स्मरण व हिन्दू-मुस्लिम एकता - संत लालदास)

(4) जब जब दरसन राम दे, तब मांगो सतसंग

चाहो पदवी भगत की, चढ़े सुनवधा रंग (संतसंग की महिमा - संत चारणदास)

(5) काम, क्रोध, अभिमान, कुपह काटा मत लावौ।

अलख भजन उर घरौ, मरो मति मौत चुकावौ।

(नैतिकता पर जोर - संत हरिदास)

इसी तरह संत जाम्बोजी, सुंदरदास, पीपाजी आदि ने महत्वपूर्ण वाणियां देकर समाज सुधार ज्ञान मार्ग को बढ़ावा दिया।

उपर्युक्त उल्लेखित संतो का किसी न किसी सम्प्रदाय से जुड़े हैं। राजस्थानी संत साहित्य के विकास में निम्न चार सम्प्रदायों का विशेष योगदान रहा।

(1) नाथ सम्प्रदाय: इसका खास प्रचार गोरखनाथ ने किया।

(2) रसिक सम्प्रदाय: इसकी गद्दी रैवास (सीकर) सं आग्रदास इसके संस्थापक थे।

(3) विश्वोई सम्प्रदाय: इसकी स्थापना संत जाम्बोजी ने नागौर में की थी।

(4) जसनाथी सम्प्रदाय: संत जसनाथ ने इस सम्प्रदाय की स्थापना बीकानेर में की राजस्थान के अन्य सम्प्रदायों में निरंजनी सम्प्रदाय (प्रवर्तक हरिदास), निम्बाके (परसुराम), दादूसम्प्रदाय (दादूदयाल), चरणदासी (प्रवर्तक चरणदास), लालदासी (प्रवर्तक लालदास) आई पंथ (जीजीबाई) इत्यादि प्रमुख हैं।

(ख) सगुण भक्तिकाव्य: हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल की भाँति इस मध्यकालीन राजस्थानी सहित्य में भी राम भक्ति काव्यधारा और कृष्ण भक्ति काव्यधारा ये दो रूप सगुण भक्ति में विद्यमान रहे। जिनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है -

(1) रामभक्ति काव्य धारा: आराध्य भगवान राम को आधार बनाकर अनेक ग्रन्थों का सृजन हुआ। यह काव्य धारा सांख्य, दास्य, अनुगृह, पुष्टि, ज्ञान और प्रेम आदि भक्ति के सभी प्रकारों को साथ लेकर चली। राम मर्यादा पुरुषोत्तम रूप का बखान कर इस काव्य धारा ने शील, शक्ति और सौन्दर्य तीनों में समन्वय दिखाया। भारतीय संस्कृति के आदर्शों और मूल्यों की स्थापना करने का प्रयास रामभक्त कवियों ने किया जो उस गुण की परम आवश्यक थी। यह काव्य धारा सगुण-निर्गुण, द्वैत-अद्वैत, शैव-वैष्णव, ज्ञान-भक्ति, राजा-प्रजा में समन्वय स्थापित करने में सफल रही। राजस्थान के रामभक्त कवियों में मेहोजी, 'माधवदास', 'दधवाडिया', 'ईसरदास', 'अल्लूनाथ कविया', 'पृथ्वीराज राठौड' एकलिंगनाथ इत्यादि प्रमुख हैं जिन्होंने भगवान राम की महिमा का बखान किया। माधोदास दधवाडिया का सहित्य इतिहास में नाम राम रासौ नामक ग्रन्थ के कारण अमर हो गया। यह डिंगल भाषा शैली की सशक्त रचना है। उदाहरणतः

‘सिध सरुहि एक साधि। वसै संचरै चरै वनि।

मरै न कोय अळ म्रिति। ताप दुख व्याधि न कायंतनि।‘

अर्थात् राम राज्य में सिंह और गाय क्रमशः अहिंसक और अभय होकर वन में एक साथ चरते हुए विचरण करते हैं। प्रजाजनों में कोई अकाल मृत्यु का शिकार नहीं होता और न ही किसी को किसी प्रकार का शारीरिक कष्ट होता है। जैन कवि ब्रह्म जिनदास और कुशललाभ ने भी भगवान राम पर पोथियों की रचना की है।

कृष्णभक्ति काव्य धारा: श्री राम के साथ कृष्ण भक्ति में भी कई ग्रन्थ रचे गए। भगवान का लोकरक्षक और लोकरंजन दोनों रूपों का वर्णन किया गया। वात्सल्य और सख्यभाव की भक्ति की प्रधानता रही है। पुष्टिभारगीय भक्ति भावना के अनुसार ब्रह्म औरजीव की अभिन्नता प्रकट हुई है। इस काव्यधारा के प्रमुख कवि हैं - ईसरदास, मीराबाई, सायां झूला, जग्गा खिडिया, पृथ्वीराज राठौड, अल्लूनाथ आदि। श्री कृष्ण की महिमा का चित्रण अल्लूनाथ ने इस प्रकार किया है।

गोवरधन ऊधरण, ग्राह भारण गज तारण।

जरासिंध सिसपाल भिडे, भू-भार उतारण।।

इसी तरह क्रिसन-रूकमणी री बेलि में रूकमणी कृष्ण के दर्शन से स्वयं को धन्य मानती है-

वदना रविंद गोविंद वीखिभई
आळोचई आप-आप-सूं

हिव रूकमणी क्रितारथ हुइस्यइ

हुवउ क्रितारथ पाहिल हूं। (पृथ्वीराज राठौड़)

जैन काव्य: जैन कवियों के आख्यान काव्य, आध्यात्मिक पोथियों से भी मध्यकाल का साहित्य समृद्ध हुआ। इनमें कुशललाभ और दौलत विजय विशेष रूप से उल्लेखनीय कवि हैं। दौलतविजय कृत 'खुमाण रासौ', रासौ ग्रन्थों में अत्यन्त लोकप्रिय हैं। इसमें चित्तौड़ के बप्पा रावल से लेकर रतन सिंह तक के राजाओं का वर्णन है। खुमाण रासौ में पद्मावती की घटना के साथ-साथ राजस्थान के जन-जीवन तीज त्यौहारों का भी वर्णन है। उदाहरणार्थ

पिउ चित्तौड न आविउ, सावण पहली तीज।

जोवै बाट विरहिणी, खिण खिण अणवै खीज।

गद्य साहित्य: मध्यकाल में ख्यात साहित्य, वचनिका, वात् वंशावलियां, पट्टावली इत्यादि गद्य के विविध रूपों के दर्शन होते हैं। मध्यकाल में पृथ्वीराज चरित (कवि माणिक्य चंद सूरि) वचनिका राठौड़ रतिन सिंह महेश दासोत री (खिडिया जग्गा), माताजी वचनिका (जतीब्रह्मचन्द) मुंहता नैणसी री ख्यात (मुहणौत नेणसी) इत्यादि उल्लेखनीय विविध गद्य रूप हैं।

लक्षण ग्रन्थ: इस काल में छंद, अलंकार, डिंगलकोश आदि पर ग्रन्थों की रचना की गई। कुशललाभ कृत 'पिंगल शिरोमणी', राजस्थानी भाषा का पहला लक्षण ग्रन्थ माना गया। जिसमें छंद, अलंकार डिंगल गीत कोश (नाममाला), पहली इत्यादि विषयों का वर्णन है। इसके अतिरिक्त हमीरदान रतनू कृत 'हमीर नाम माला', पिंगल प्रकाश, मंछाराम कृत 'रघुनाथ रूपक', आढ़ा किसना कृत 'रघुवर जस प्रकास' और मुरारिदान कृत 'डिंगलकोश' इत्यादि कई रचनाएँ मिलती हैं।

13.6.3.2 भाषा - शिल्पगत प्रवृत्तियाँ:

विषयवस्तु (भावपक्ष) के साथ इस काल का राजस्थानी साहित्य काव्य कला और शिल्प की दृष्टि से भी अत्यन्त समृद्ध रहा है। इस काल की भाषा-शिल्पगत विशेषताएँ निम्नलिखित हैं -

(1) काव्य भाषा: इन कवियों ने लोक प्रचलित डिंगल शैली में अधिकांशतः ग्रन्थों का प्रणयन किया था। इस समय तक डिंगल भाषा विकसित होकर एक पतिष्ठित व सुन्दर भाषा बन चुकी थी। इसमें मारवाड़ी रूप ने सर्वाधिक प्रभावित किया। इसके दूढाणी हाडौती, मेवाडी आदि बोलियों में भी साहित्य रचना होने लगी थी।

(2) काव्य रूप: इस काल में प्रबंध और मुक्तक दोनों काव्य रूपों में काव्य सृजन हुआ। प्रबन्ध काव्यों में वेलि, आख्यान, रासौ, आदि रूपों में ग्रन्थों का निर्माण हुआ है। वेलि साहित्य राजस्थानी की समृद्ध परम्परा है जो विषय की दृष्टि से तीन भागों में बँटी हुई है - 1. चारणी वेलि साहित्य, 2. जैन वेलि साहित्य, 3. लौकिक वेलि साहित्य। मध्यकाल में नायक-

नायिकाओं को लेकर वैलि, रासौ, वचनिका, प्रकास, विलास कवित्त, छंद इत्यदि काव्य रूपों की रचना हुई। जिनका नामोल्लेख पूर्व में किया जा चुका है।

(3) छंद अलंकार: राजस्थानी साहित्य में दूहों छन्द सर्वाधिक प्रिय रहा है। नीति, वीर, शृंगार, प्रकृति वर्णन और अन्य अभिव्यक्ति के वास्ते डिंगल कवियों ने दूहो छंद का रूचिपूर्वक प्रयोग किया है। अपभ्रंश साहित्य से लेकर हिन्दी साहित्य तक यह प्रिय छन्द रहा है। 'दूहै' के सम्बन्ध कविवर कन्हैयालाल सेठिया ने लिखा है -

देस नी मरूदेस सो, मृगमद जिसौ न गंधा

सुरसत रै भंडार में, दूहै जिसौ न छंद।

राजस्थानी साहित्य में दोहै छन्द के भी अनेक भेद है जिसमें एक 'सृद्ध दूहौ' हिन्दी के दोहै छन्द के समान ही है। इस छन्द में भी विषय चरणों में 13-13 मात्राएँ और सम चरणों में 11-11 मात्राएँ और अंत में गुरुलघु होता है।

उदाहरणार्थ -

इळा ने देणी आपणी, - 13 मात्राएं

हालरिया हुलराय । - 11 मात्राएं

पूत सिखावै पालणै - 13 मात्राएं

मरण बड़ाई माये॥ - 11 मात्राएं

उपर्युक्त सुद्र दूहा छन्द के उदाहरण में तुकांत में गुरुलघु (5 - 1) है। इसके अतिरिक्त बड़ो दूहों (प्रथम चतुर्थ चरण में 11-11 मात्राएं तथा द्वितीय-तृतीय चरण में 13-13 मात्राएं), और तुंवरी दूहो (बड़ो दूहों का उलटा रूप) भी दोहा छंद के अन्य भेद होते हैं।

दोहै के अतिरिक्त, सोरठा (सुद्ध दूहै का विपरीत) वेलियों और नीसाणी नामक डिंगल गीत छन्दों का भरपूर प्रयोग इस काल की रचनाओं में हुआ है।

अलंकार: इस काल में शब्दगत और अर्थगत दोनों प्रकार के अलंकारों का प्रयोग में हुआ है। अनुप्रास, यमक, श्लेष, उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अतिशयोक्ति आदि अलंकारों का प्रयोग हुआ है। रूपक अलंकार का उदाहरण दृष्टव्य है।

“घूघर पाखर धमकती, सिंधुर काजळ सार।

विचित्र घड़ा आई वरण, धज लज घूघरा।“

अर्थात् घड़ा (सेना) रूपी सुन्दरी, पाखर रूपी घूघरा धमकावती, सिंधुर (हाथियों), रूपी कालळ सारती और ध्वजा रूपी लज्जा का घूघट धारण कर वरण के लिए युद्ध भूमि में आ गई है। यह उदाहरण रूपक के साथ-साथ आधुनिक मानवीकरण अलंकार को भी प्रस्तुत करता है।

वैण सगाई (वयण सगाई): यह राजस्थान का मौलिक और महत्वपूर्ण अलंकार है जिसका प्रयोग डिंगल काव्य में अनिवार्य रूप से हुआ है। नाद सौन्दर्य और कर्णप्रियता इस अलंकार में विद्यमान होते हैं। यह शब्दालंकार हैं और इसमें पंक्ति के प्रथम शब्द का प्रारम्भ और अंतिम शब्द का प्रारम्भ एक एक ही वर्ण से होता है जैसे -

कमला-पति तणी कहैवा कीरती (क वर्ण)

आदर करे जु आदरी (आ वर्ण)

वयण सगाई शब्द 'वरण सगाई' (वर्णों के सम्बन्ध (मेल)) से बना है। छंद के किसी चरणों में पहला और अंतिम अक्षर का मेल दिखता है वहाँ वयण सगाई होता है।

रस: 'वाक्यं रसात्मकं काव्यं' के अनुसार रस काव्य की आत्मा है। मध्यकालीन राजस्थानी साहित्य में वीर, शृंगार और शांत रस की प्रचुरता दृष्टव्य है। जिनका उल्लेख विविध उदाहरणों द्वारा पूर्व में किया जा चुका है।

13.7 राजस्थानी साहित्य का आधुनिक काल (1850 से अद्यतन)

13.7.1 आधुनिक कालीन परिवेश

राजस्थानी साहित्य का आधुनिक काल 1850 से लेकर अद्यतन माना जाता है। सन् 1857 के प्रथम स्वतंत्रता आन्दोलन से राष्ट्रीयता, स्वतंत्रता, भावात्मक एकता इत्यादि भावनाओं का ज्वर फूटा। देश के इतिहास ने नई करवट ली। साहित्य में भी बदलाव आया। आधुनिक काल के इस पूरे चरण को दो चरणों - (1) स्वतंत्रता पूर्व का राजस्थानी साहित्य तथा (2) स्वतंत्रता पश्चात का राजस्थानी साहित्य में बाँटा गया है। मध्यकाल तक राजस्थानी साहित्य में युद्ध, शौर्य चित्रण और भक्ति उदगार उस समय मुख्य स्वर थे, परन्तु आधुनिक काल में परिस्थितियाँ बदली और साहित्य आजादी की लड़ाई से जुड़ गया अंग्रेजी साहित्य का प्रभाव भी इस पर पड़ा। अंग्रेजों के शासन ने देश को आर्थिक रूप से पंगु बना दिया था। कुटीर उद्योग धन्धे नष्ट हो गए किसान - मजदूर बेकार हो गए थे। राजस्थान में तो सामंतों के अत्याचार से जनता अत्यधिक दुखी थी। बिजौलिया ओर बेगू आन्दोलन से राजस्थान भी दुखी जनता का अनुमान लगाया जा सकता है। लगान व सूदखोरी की प्रथा से शोषित और शोषक वर्ग में गहरी खाई बनती जा रही थी। इस युग में द्विवेदी युग, छायावाद, मार्क्सवाद, प्रतीकवाद, राहस्यवाद, हालावाद, प्रयोगवाद, नयी कविता अस्तित्ववाद, मनोविज्ञान चिन्तन, इत्यादि का असर राजस्थानी साहित्य पर दिखाई देता है। राजस्थानी काव्य और गद्य की सभी विधाएँ नवीन परिवेश से प्रभावित हुई हैं।

गद्य-पद्य की नई विधाएँ विकसित हुईं। राजस्थानी साहित्यकार परम्परागत स्वभाव एवं तेवर को छोड़कर युद्ध विरोधी बन गए। अणु परमाणु यंत्रों से उपजी बेरोजगारी से त्रस्त जनता से नाता जोडा, स्वतंत्रता के पश्चात मोहभंग साहित्य भी प्रभावित हुआ। अब धर्म और अध्यात्म की जगह युग बोध और सामाजिक सरोकार से जुड़कर राजस्थानी साहित्य ने नई पहचान बनाई।

13.7.2 आधुनिक कालीन राजस्थानी काव्य

13.7.2.1 स्वतंत्रता से पूर्व काव्य एवं प्रवृत्तियाँ

(1) परम्परागत राजस्थानी काव्य - 1850 से 1947 तक के काव्य को इस श्रेणी में रखा जा सकता है। इस संबंध में सूर्यमल्ल मिश्रण के काव्य से आधुनिक राजस्थानी कविता का

प्रारम्भ माना जाता है। ये जनकवि थे और 1857 के स्वतंत्रता संग्राम में राजाओं की कायरता देखकर अत्यन्त दुखी हुए थे। वीर सतसई लिखकर उन्होंने जनता में राष्ट्रीयता और देशभक्ति के भाव उत्पन्न किए थे। वीरसतसई में वीर सपूतों और वीर माताओं का सटीक चित्रण किया गया है। उदाहरण -

इळा न देवी आपणी, रण खेतां भिड जाए
पूत सिखावै पालणै, मरण बड़ाई माया।
गोठ गया सेब गेह रा, वणी (दुश्मन) अचानक आया।
सिंधण जायी सिंधणी, लीधी तेग (तलवार) उठाय।

सूर्यमल्ल मिश्रण के अतिरिक्त अमरदान लालस, महाराजा चतुरसिंह, केसरीसिंह बारहठ, रामनाथ कविया आदि राष्ट्रीय धारा के कवि रहै है। दूसरी श्रेणी के कवियों में विजयसिंह पथिक, माणिक्यलाल वर्मा, जयनारायण व्यास आदि भी शामिल थे। व्यास जी ने लिखा, -

कह दो आ डंके री चोट मारवाड नहीं रहसी ठोटं

इसी तरह नाथूदान महियारिया ने वीर सतसई, गांधी शतक चंडी शतक आदि कृतियों के माध्यम से राष्ट्रीयता के नए विचारों को अभिव्यक्ति दी हैं वीर सतसई में राष्ट्रीय का प्रभावी चित्रण है -

“सूत मरिया हित देस में, हरख्यौ बंधु समाज।

मां नह हरखी जनम ने जितरी हरखी आज।“

13.7.2.2 स्वातन्त्र्योत्तर काव्य एवं प्रवृत्तियाँ

(1) **जागरण का स्वर:** (प्रगतिशील कविता) प्रारम्भ में गाँधीवादी चेतना विविध समाज सुधार आन्दोलन, समाजवादी चेतना के फलस्वरूप जागरण और चेतना परक काव्य लिखा गया। आजादी के पश्चात कवियों के सामने दोगुनी चुनौतियाँ थी। राज तो मिल गया पर सुराज नहीं प्राप्त हुआ था। आधुनिक काव्य पर साम्यवाद और समाजवाद का जबरदस्त प्रभाव पड़ा है। इनसे प्रभावित कविता में प्रगतिवादी स्वर विद्यमान रहा। इनमें किसानो, मजदूरों और गरीबों की पीड़ा और दुख को उजागर किया गया है। रेवतदान चारण नंदभारद्वाज, सुमनेश जोशी, आईदान सिंह भाटी, श्याम महर्षि, चन्द्रप्रकाश देवल और चेतन स्वामी आदि प्रमुख प्रगतिशील कवि रहै है। रेवत दान चारण ‘मांग्या खेत मिळे नीं करसा’ की वाणी से किसानों को चेताया तो जमना प्रसाद ठाडा ‘जाग-जाग री बस्ती’ कविता के माध्यम से जागरण का स्वर भरा।

(2) **वीर, भक्ति और नीति प्रधान काव्य:** यद्यपि आधुनिक काल की कविता में प्रगतिशीलता का स्वर गुंजारित हो रहा था तथापि वीर, भक्ति और नीति सम्बन्धित परम्परागत काव्य रचनाएँ भी लिखी जाती रही है। क्योंकि वर्तमान में संदर्भों में भी इनकी महत्ता है। आज के युग में कौरु उपदेश से काम नहीं हो सकता। जहाँ मनुष्य को सच्ची शिक्षा मिलती है वहाँ कविता प्रभावित करती है। रमणिया रा सोरठा (कन्हैयालाल सेठिया) में जीवन की सच्चाई इस तरह व्यक्त हुई है।

“अस्थिर है संसार, गरब न कीजै भूल कर

ले ज्योसी जण च्यार रथी बणकर रमणिया।।“

(3) **प्रकृति काव्य:-** प्रकृति मानव की चिरसह चारिणी रही है। प्रकृति अपने कोमल और कठोर दोनों रूपों से मानव को प्रभावित करती रही है। राजस्थानी काव्य में प्रकृति का सोवणा मोवणा चित्रण मिलता है। बादळी के लिए कवि चंद्रासिंह ने लिखा है -

आस लगायां मरूधरा, देख रही दिन रात।

भागी आ तूं बादळी आई रूत बरसात।।

श्री रेवतदान चारण की कविता बिरखा-बीनणी कविता घणी प्रसिद्ध है -

लूम-झूम मदमाती मन बिलमाती सौ बळखाती।

गीत प्रीत रा गातीए हंसती आवै बिरखा बीनणी।।

(4) **हास्य व्यंग्य प्रधान कविता:** आधुनिक राजस्थानी कविता में स्वतन्त्रता पश्चात की परिवर्तित राजनीतिक, सामाजिक परिवेश के प्रति असंतोष को व्यंग्य के माध्यम से व्यक्त किया गया है -

बध बध होगी घेर घुमेर, छाया फैली च्यारूं मेर

आई ऊमर के औसाण, दूध्या नीमड़ी

खुद का जोबण सू उणजांग दूध्या नीमड़ी।

गणेशीलाल व्यास उस्ताद की 'राज बदलग्यौ कहानै काई' और 'खाय गधेड़ा केसर क्यारी' जैसी रचनाएँ व्यंग्य के उदाहरण हैं। सामाजिक विषमताओं भ्रष्टाचार, काला बाजरी, अंध विश्वास और सामाजिक परिस्थितियों पर व्यंग्य किया गया है।

(5) **गीतिकाव्य:-** राजस्थानी के आधुनिकताल कविता के गीतात्मक स्वरूप का अच्छा विकास हुआ है। गीतकारों ने कविताओं को मंचों के माध्यम से देश विदेश में पहुंचाया। इन गीतों में कन्हैयालाल सेठिया का 'पातल और पीथळ' और 'धरती धोरा री' रचना अमूल्य निधि है और आज तक पाठक और श्रोताओं की जुबान पर है।

अरे घास री रोटी नू, जद बन बिलावड़ा ले भाग्यो।

नान्हो सो अमर्यो चीख पड्यो, राणा रो सोयो दुख जाग्यो।

हूं लड्यो घणो, हूं सह्यो घणो, मेवाडी आण बचावणनै।

पण पाछ नही राखी रण में, बैरया रो खूण बहावणनै।

जद याद करूं, हळदीघाटी नैणा सू रगत उतर आवै।

सुख दुख रो साथी चेतकडो, सोती सी हूंक जगा जावै।

(पातल और पीथळ)

इसी तरह मेघराज मुकुल की 'सैनाणी' इसी तरह की प्रसिद्ध रचना है। गीतकाव्य के दो रूप (1) भावनापरक निजीगीत और (2) समाजचेतना परक सांस्कृतिक गीत में से दूसरा रूप ज्यादा प्रचलित रहा है। इन गीतों की भाषा, लय, ध्वन्यात्मकता, भावात्मकता और अनुभूति की तीव्रता बेजोड़ है। इन गीतकारों में सत्यप्रकाश जोशी, रघुनाथ सिंह हाडा, शान्ति भारद्वाज, भीमपांडिया प्रेम जी प्रेम, हरीश भादानी जैसे प्रसिद्ध नाम हैं। इसी क्रम में नवगीतकारों में, दुर्गादान सिंह गोड़, मुकुट गणिराज, आईदान सिंह भाटी, वीरेन्द्र लखावत, राजेन्द्र सोलंकी आदि नाम उल्लेखनीय हैं।

(6) **नयी कविता और समकालीन कविता:** स्वतंत्रता के पश्चात् धीरे-धीरे साहित्यकार नये जीवन दर्शन परिवेश, समाज में सरोकारों से जुड़े विज्ञान और तकनीकी के प्रभावस्वरूप उपस्थित परिवर्तन को खुली आँखों से देखा और स्वीकार किया। नयी कविता नए जीवन की धडकन है। आज की कविता सभी व्यवस्थाओं से मोहभंग की कविता है। नयी कविता बिखरते जीवन मूल्या संत्रास, अजनबीपन, मानव की घुटन, पीडा, हताशा, अकेलापन को व्यक्त करती है। मोहन आलोक, श्याम महर्षि, नंदभारद्वाज गणपति चन्द्र भण्डारी, डॉ. शक्तिदान कविया, सांवर दइया, डॉ. अर्जुन देव चारण मालचंद तिवाड़ी, अम्बिका देव आदि की गणना नए कवियों में की जाती है। इसके अतिरिक्त कन्हैयालाल सेठिया की 'लीलटांस' नारायण सिंह भाटी 'मिनख रो समझावणौ दौरा है, भगवतीलाल व्यास 'सबदराग', हरीश भादाणी 'बाथां में भूगोल' श्याम महर्षि 'अड़वौ', अर्जुनदेव चारण 'रिधरोही' आईदान भाटी 'हसतोड़ा होठा रो साच', नन्दभारद्वाज 'अधार पंख', 'बोल डूंगरी ढब ढबूक', अतुल कनक 'आवां बातां करा' मीटेश नि मोंही आपै रे आळै दौळै आदि नई कविता के प्रसिद्ध कवि और उनकी रचनाएँ हैं जिन्होंने आधुनिक राजस्थानी काव्य धारा को समृद्ध किया है।

(7) **आधुनिक राजस्थान काव्य की भाषा शैली** - राजस्थानी काव्य का शब्द भण्डार अत्यन्त समृद्ध है। आधुनिक राजस्थानी काव्य की भाषा में अपने क्षेत्र के अनुसार मारवाड़ी, मेवाड़ी, ढूढाड़ी, हाडौती बोली के रूप देखने को मिलते हैं। राजस्थानी भाषा का शब्द भण्डार अत्यन्त समृद्ध है। राजस्थानी भाषा में विविध बोलियों के अनुसार शब्दों का चयन हुआ है। भाषा सरस सरल व प्रवाहमयी है। संस्कृत, अरबी, फारसी, अंग्रेजी जैसी भाषाओं में शब्द भी राजस्थानी काव्य में आये हैं। आधुनिक राजस्थानी भाषा काव्यशास्त्र के बंधनो से दूर है। भाषा में बिम्बात्मकता व प्रतीकात्मकता विद्यमान है। कविता के साथ गीत और गजलों में भाषा की प्रवाध्यमता, सरसता आधुनिक और ध्यानयातमकता विद्यमान है। राजस्थानी भाषा नए भाव बोध को प्रभावी रूप से व्यक्त करने में सक्षम है।

13.7.3 गद्य की विविध विधाएँ: परिचय

(1) **उपन्यास:** कथा साहित्य में गद्य लेखन का सबसे बड़ा स्वरूप उपन्यास है। जिस प्रकार पद्य में महाकाव्य का स्थान है उसी प्रकार गद्य में उपन्यास का है। राजस्थानी उपन्यासों में राजस्थान की संस्कृति, समसामयिक परिवेश व मूल्यों का वर्णन मिलता है। साथ ही आंचालिकता के माध्यम से माटी की गंध का मनोहारी चित्रण है। उपन्यास लेखन में सर्वप्रथम नाम आता है श्रीलाल नथमल जोशी। 1956 में प्रकाशित इसका उपन्यास 'आभैपटकी' ने नए युग की शुरुआत की। इसके पश्चात् 1966 ई. प्रकाशित अन्नाराम सुदामा कृत 'मैकती काया मुळकती धरती', 'अचूक इलाज' 'मैवे रा रूख' यादवेन्द्र शर्मा चन्द्र कृत 'हूँ गौरी किण पीव की', विजयदान देथा कृत 'आठा राजकुंवर' 'मा रौ बदळौ', 'तीडौराव', करणीदान बारहठ 'मंत्री की बेटी' बडी बहनजी आदि उल्लेखनीय कृतियाँ हैं। राजस्थानी उपन्यासों में विषय-वस्तु की विविधता रही है। ऐतिहासिक मनोवैज्ञानि आंचलिक, आदर्शवादी यथार्थवादी, सामाजिक सभी

प्रकार के उपन्यासों का सृजन हुआ है। 'मैकती काया मुलकती धरती' उपन्यास आत्मकथात्मक शैली में, तो तीडौराव में प्रतीक शैली है।

(2) **कहानी:-** राजस्थान के जनजीवन में प्रकृति नए भावबोध के अनुसार नई कहानियाँ नए शिल्प में लिखी गई है। राजस्थानी कहानीकारों में मणिकधुकर (पगफेरो), चेतन स्वामी (धांय, गूंगली, पुण्याई और पान लागग्यो), डॉ. पुरूषोत्तम छांगाणी (बिचालै कहानी संग्रह), मीठेस निरमोही (बानगी), भरल ओला (जीवन री जात कहानी संग्रह), महिला कथाकार डॉ. जबा रसीद (नांव विहूणा किसता, कहानी संग्रह), डॉ. चांद कौर जोशी (सांचो सुपनौ), पुष्पलता कश्यप (मैला हाथ-उजला हाथ) आदि कहानीकार अपनीकृतियों में आधुनिक काल की संवेदना और शिल्प को बखूबी व्यक्त किया है।

(3) **निबन्ध:-** आधुनिककाल में निबन्धकारों ने समसामयिकता को ध्यान में रखते हुए रचना की। विविध भाव, विचार, व्यंग्य, विनोद से जुड़े भाव आदि लेखन में आधार रहे हैं। रानी लक्ष्मीकुमारी चूण्डावत, डॉ. मनोहर शर्मा, रावत सारस्वत, सुमेरसिंह शेखावत, डॉ. किरण नाहटा, अमोलकचंद जांगिड, डॉ. कल्पना सिंह शेखावत आदि उल्लेखनीय हैं। आधुनिक काल में प्रमुख निबन्ध संग्रह है रोहिडै रा फूल (डॉ. मनोहर शर्मा), सुसर तो कथता भला (सूर्यशंकर पारीक), राजस्थानी संस्कृति रा चितराम (जहूर खां मेहर), भळ लूवां बाजो कती (डॉ. किरण नाहटा), माटी सू मजाक (बी.एल. माली अशांत) मणिमाला (डॉ. कल्याणसिंह शेखावत) आदि।

(4) **नाटक - एकांकी:** आधुनिक गद्य विधाओं की तरह नाटक और एकांकी (सेकाकी) के क्षेत्र में कई कृतियाँ सामने आईं। आधुनिक युग में सिनेमा के प्रचार-प्रसार के कारण नाटक लेखन की ओर रुझान कम होने लगा था। साहित्यिक नाटकों में डॉ. आज्ञाचन्द भण्डारी कृत पंन्नाधाय गोवन्दिलाल माथुर कृत 'दहैज', यादवेन्द्र शर्मा कृत 'तास रौ घर', निर्मोही व्यास कृत 'ओळमों' भीखो ढोली 'सांवतो' आदि। इस काल में गीत नाट्य भी प्रचलित रहा।

इस काल में नाटको की अपेक्षा एकांकी विधा का विस्तार हुआ। 1966 में राजस्थान साहित्य अकादमी द्वारा सम्पादित एकांकियों के संकलन में इन लेखकों के एकांकी लिए गए थे। पारीक जी का 'बौलापण', लक्ष्मीकुमार चूण्डावत का 'सामधरमीमाजी', डॉ. शक्तिदान कवियों का वीरमती डॉ. आज्ञाचन्द भण्डारी का देस भगत भामासा, दामोदर प्रसाद जी का 'कामरान की आंखडल्या', बेजनाथ पॅवार का 'आपणो खास आदमी', अम्बालाल जोशी का मिनखपणौ और यादवेन्द्र चन्द जी का 'देवता' इत्यादि का सम्मिलित है। श्री गणपति लाल डांगी और श्रीमंत व्यास भी अच्छे एकांकीकार रहे हैं।

(5) **रेखाचित्र:** किसी मनुष्य, वस्तु, घटना या भावना का कम से कम शब्दों में जीवन्त चित्र अंकन करना रेखाचित्र कहलाता है। राजस्थानी साहित्य में यह गद्य विधा हिन्दी साहित्य से आई है। मुरलीधर व्यास और मोहन लाल पुरोहित ने 'जूनां जीवता चितराम' शीर्षक से रेखाचित्र लिखा। इसके अतिरिक्त श्री नथमल जोशी कृत 'सबड़का', भंवर लाल नाहटा कृत बानगी, शिवराज छांगाणी कृत 'उणियारा' ब्रजनारायण पुरोहित कृत अटाखां और प्रो. नेमनारायण जोशी कृत कूदण बाबो आदि रेखाचित्र विधा से सम्बन्धित रचनाएँ हैं।

(6) **जीवनी:** राजस्थानी में जीवनी साहित्य आजादी के बाद लिखा गया और तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं जैसे 'मसवाणी', 'आळमो' और 'हरावल' आदि में प्रकाशित भी हुआ। श्री लाल नथमल जोशी की गाँधी जी की जीवनी आपणा बापू जी डॉ. किरण नाहटा की 'शिवचन्द भरतिया' दीनदयाल ओझा की 'देस रा गौरव' भारत रा निर्माता आदि उल्लेखनीय रचनाएं हैं।

इसके अतिरिक्त इस काल में संस्मरण, यात्रा साहित्य और रिपोर्ताज इत्यादि अन्य गद्य विधाओं का भी विकसित रूप देखने को मिलता है।

13.8 सारांश :

प्रस्तुत इकाई में राजस्थानी साहित्य के इतिहास के विविध कालों और प्रत्येक काल की पृष्ठभूमि साहित्यिक प्रवृत्तियाँ, रचनाकारों और रचनाओं की जानकारी आपने प्राप्त की है। शौरसेनी अपभ्रंश के नागर (गुर्जर) रूप से राजस्थानी भाषा का विकास हुआ। भारतीय संविधान में उल्लेखित भाषाओं में राजस्थानी भी सर्वप्रमुख भाषा है जो मारवाड़ी, मेवाड़ी, ढूंढाणी, हाडौती, मेवाती, मालवी बागड़ी आदि प्रमुख बोलियों के साथ पूरे प्रदेश (राजस्थान) में बोली और लिखी जाती है। इन प्रमुख बोलियों में राजस्थानी साहित्य का सृजन हुआ है। डिंगल और पिंगल राजस्थान की एक विशेष काव्य शैली है। जिसका रूप आदिकाल और मध्यकाल में वीर, भक्ति और शृंगार प्रधान काव्यों में मिलता है। राजस्थान के आदिकाल व मध्यकाल में डिंगल बोलचाल की राजस्थानी से अलग एक साहित्यिक भाषा थी। राजस्थानी साहित्य का आदिकाल जैनकवियों से शुरू होकर लोकजीवन से जुड़कर चारण कवियों के हाथों में सज्जधज कर आगे बढ़ा और मध्यकाल में और पुष्पित पल्लवित हुआ। 15 वीं सदी से 19 वीं सदी का राजस्थानी साहित्य का मध्यकाल विषय वस्तु और शिल्प (काव्य-कला) दोनों दृष्टि से उपलब्धिपूर्ण रहा है। क्रिसन-रूकमणी री वैली, राम रासौ, हाला झाला री कुण्डलियां, मीरां के पद, राजिया रा दूहा दादू-वाणी (अनमैवाणी ओर काया वेलि) जैसी रचनाओं से इस काल का साहित्य परिपूर्ण है। काव्य भाषा काव्य रूपों (रास, रासौ, वेलि, वचनिका, विलाज, ख्यात) और छंद अलंकारों (वयण सगाइ इत्यादि) लक्षण ग्रन्थों की दृष्टि से सर्वोत्कृष्ट रचनाओं का सृजन किया गया। राजस्थानी साहित्य के आधुनिक काल (1850 से अद्यतन) में राजस्थानी गद्य और गद्य की विविध विधाओं के क्षेत्र में देशकाल व परिस्थितियों के अनुसार उत्तरोत्तर विकास व परिवर्तन देखने को मिलता है। इस काल को स्वतन्त्रता पूर्व और स्वतंत्रता पश्चात दो कालों में विभाजित किया है। कथ्य और शिल्प दोनों दृष्टि से इस काल में परम्परागत और आधुनिक भावबोध का निर्वाह किया गया है। जहाँ परम्परागत वीर, भक्ति और नीति प्रधान काव्य है, तो प्रगतिशील स्वर नई कविता, समकालीनता, हास्य व्यंग्य गीत-गजल आदि विविध स्वर आधुनिक कविता में दृश्य है। राजस्थानी साहित्य का आधुनिक काल गद्य और पद्य दोनों रूपों की विविध विधाओं में जीवन के सभी पक्षों और समसामयिक समाज के सरोकारों के साथ आगे बढ़ रहा है।

13.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. प्रो. (डॉ.) कल्याण सिंह शेखावत: राजस्थानी भाषा, साहित्य और संस्कृति, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर, 1989
2. बी.एल. माली 'अशांत': राजस्थानी साहित्य का इतिहास रचना प्रकाशन, जयपुर 2004
3. डॉ. किरण नहटा: आधुनिक राजस्थानी साहित्य: प्रेरणा स्रोत और प्रवृत्तियाँ, चिन्मय प्रकाशन, बीकानेरा
4. डॉ. मोतीलाल मेनारिया: राजस्थानी भाषा और साहित्य।
5. डॉ. हीरालाल माहेश्वरी: राजस्थानी भाषा और साहित्य, जयपुर।
6. डॉ. शक्तिदान कविया: डिंगल के ऐतिहासिक प्रबंध काव्य, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर सन् 2007
7. डॉ. जगमोहन सिंह परिहार: राजस्थानी भाषा साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, जोधपुर सन् 1987।
8. माधवदास दधवाड़िया: राम रासौ, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली 2005।
9. नरोत्तमदास स्वामी: क्रिसन-रूकमणी री वेली, राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर सं. 2009।
10. प्रो. कल्याण सिंह शेखावत: राजस्थानी भाषा और साहित्य, त्रिवेणी प्रकाशन, जयपुर।
11. प्रो. सोहनदान चारण: ईसरदास ग्रन्थावली, साहित्य अकादमी, जयपुर।

13.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. राजस्थानी साहित्य के इतिहास पर एक लेख लिखिए।
 2. राजस्थानी साहित्येतिहास का कालविभाजन कीजिए तथा आदिकालीन राजस्थानी साहित्यिक परिवेश पर प्रकाश डालिए।
टिप्पणी लिखिए -
- (1) आधुनिक राजस्थानी गद्य में उपन्यास लेखन
 - (2) आधुनिक राजस्थानी कविता में प्रगतिशीलता
 - (3) माधवदास दधवाड़िया
 - (4) स्वातन्त्र्योत्तर राजस्थानी काव्य